# बुनियादी शिक्षा

एक नई कोशिश

नवम्बर 2008 से जनवरी 2009

अंक – 21

## नन्हे हाथों का कमाल

# बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश

## अंक–21

**परामर्श**
हृदय कांत दीवान
सुदर्शन आयंगार

**संपादक**
के. आर. शर्मा

**सलाहकार**
एम.पी. शर्मा
भागचंद्र कुमावत
गोविन्द रावल
भरत जोशी
सुधा भण्डारी

**संपादन सहयोग**
कुमार अनुपम

**चित्रांकन**
प्रशांत सोनी

**कंप्यूटर सेटिंग**
इसरार अहमद

**संपादकीय पता**
विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र
फतेहपुरा, मोहनसिंह मेहता मार्ग
उदयपुर (राज.) 313 004
फोन : (0294) 2451497
Email : vbsudr@yahoo.com

मुद्रक : संजय प्रिन्टर्स, उदयपुर

## इस अंक में

चिट्ठी–पत्री 4
नई तालीम : अनसुलझे सवाल : *सुदर्शन आयंगर* 6
ज्ञान का सृजन : *नंद कुमार* 12
चलो जामुन खाने : *ज्योतिभाई देसाई* 15
अविशिका के बहान : *विक्रम सिंह अमरावत* 18
उदास लड़कों का राज : *कृष्ण कुमार* 21
बाज़ारवादी मस्ती : *के.आर. शर्मा* 23
एक नायक की अनकही कहानी : *एस. गिरिधर* 26
शिक्षा कैसी हो? : *अनंत गंगोला* 29
कैसे पढ़ाएं गणित? : *सुधीर श्रीवास्तव* 31
उच्च शिक्षण के लिए नई तालीम... 36
नन्हे हाथ, बड़े काम : *कुमार अनुपम* 39
कार्यक्रम संचालन में भाषा : *मंजू श्रीमाली* 41

**आवरण :**

बरसात के दिनों में मखमली अहसास देने वाली लेडी बीटल से तो आप वाकिफ़ होंगे ही। विद्या भवन पब्लिक स्कूल के बच्चों ने लाल रंग के ऊन से बनाई लेडी बीटल सचमुच की बीटल से कमतर नहीं। देखें आलेख भी।

**आवरण चित्र** : के. आर. शर्मा

सहयोग राशि : 30 रुपए, वार्षिक चंदा– 120/– रुपए। चैक/ड्राफ्ट – विद्या भवन सोसायटी के नाम से बनवाएं।

सौजन्य : सर रतन टाटा ट्रस्ट, मुंबई एवं राष्ट्रीय ग्रामीण संस्थान परिषद् (NCRI) हैदराबाद

# आन दी नेचर एंड स्ट्रक्चर ऑफ लैंग्वेज

## प्रो. राजेन्द्र सिंह, मांट्रियल विश्वविद्यालय, कनाडा से लिए गए साक्षात्कार का दस्तावेज़

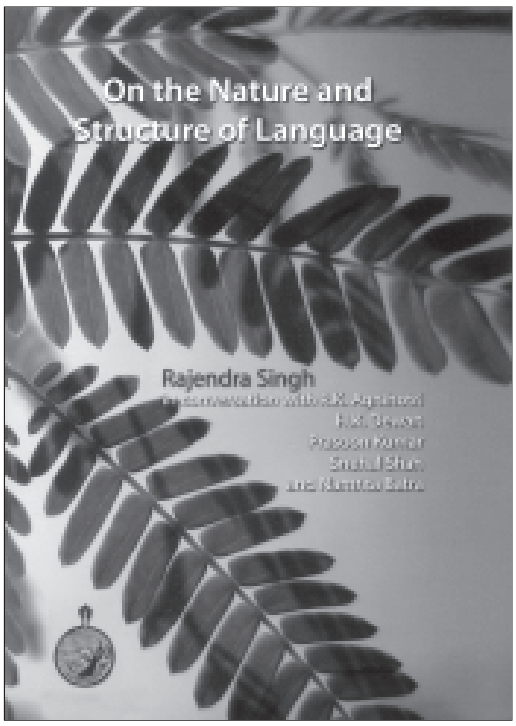


*मूल्य : पचास रुपए*

**(हिन्दी में भी शीघ्र प्रकाश्य)**

**संपर्क करें :**

विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र
फतेहपुरा, मोहनसिंह मेहता मार्ग
उदयपुर (राज.) 313 004
फोन : (0294) 2451497
Email : vbsudr@yahoo.com

विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र, उदयपुर

का

*विनम्र प्रयास*

## गांधी के शिक्षा सिद्धान्तों पर केन्द्रित

## बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश

## सदस्य बनें, औरों को भी प्रेरित करें।

चैक/बैंक ड्राफ्ट विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर के नाम बनवाएं।

---

## सदस्यता फार्म

मैं एक वर्ष के लिए बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश की सदस्यता चाहता/चाहती हूं। कृपया सदस्यता राशि रुपए 120/– (एक सौ बीस रुपए मात्र) राशि बैंक ड्राफ़्ट/ मनीऑर्डर/ नगद ——————————प्राप्त करें।

मेरा डाक का पता निम्नानुसार है–

पताः ——————————————————

——————————————————

——————————————————

——————————————————

पिन कोड ——————————————

# चिट्ठी–पत्री

बुनियादी शिक्षा अंक–20 (अगस्त–अक्टूबर 2008) मिला। इतनी अच्छी पत्रिका के पहले के 19 अंक नहीं पढ़ पाया, इसका मलाल इसका 20 वां अंक पढ़कर हुआ। कोशिश करूंगा कि इसके पिछले अंक भी पढ़ पाऊं। निःसंदेह बुनियादी शिक्षा पत्रिका परिवार शिक्षा पर ज़मीनी पहल के लिए कारगर प्रयास कर रहा है। इसके लिए आप सब साधुवाद के पात्र हैं।

इस अंक की सम्पूर्ण सामग्री पाठक की समझ को नया विस्तार प्रदान करती है। इस अंक में हम सबके मित्र हेमराज भट्टजी की शिक्षक डायरी पढ़ते हुए आंखें कई बार नम हुईं। इस योग्य शिक्षक तथा युवा साहित्यकार को हमने दिनांक 25 नवम्बर, 2008 को एक सड़क हादसे में हमेशा के लिए खो दिया। उनकी डायरी के तीन दिनों के ही अनुभव सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था की वास्तविक स्थिति को सार्वजनिक कर देता है। साधारण सा दिखनेवाले हेमराज का व्यक्तित्व इतना अद्‌भुत होगा, इसका अहसास हमें उनके जाने के बाद हो रहा है। हेमराज के प्रयासों एवं कार्यों को व्यवस्थित करने के लिए उत्तराखण्ड के कुछ मित्र सक्रिय हुए हैं, देखें कितना कुछ कर पाते हैं।

बुनियादी शिक्षा पत्रिका शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त हताशा तथा भ्रम को कम करने में सहायक होगी। मुझे ऐसी उम्मीद जगी है। मैं भी यथासंभव योगदान के लिए तैयार हूं। आप सबको पुनः बधाई एवं शुभकामनाएं।

**अरुण कुकसाल**
सहायक निदेशक,
एससीईआरटी उत्तराखण्ड
नरेन्द्रनगर, टिहरी गढ़वाल।

बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश मैं नियमित पढ़ती हूं। लगता है कि आपके प्रयासों से बुनियादी शिक्षा की नई कोशिश अवश्य सफल होगी। लेखों का चयन भी संपादक मंडल द्वारा अच्छा होता है। इन अंकों के ज़रिए बुनियादी शिक्षा का प्रसार–प्रचार भी अच्छा हो रहा है।

मई–जुलाई 2008 के अंक में मेरा लेख ''शिक्षण–प्रशिक्षण में एक कोशिश'' प्रकाशित करने के लिए आभार।

**डॉ. कोकिला पारेख**
रीडर, हिन्दी शिक्षक महाविद्यालय
गूजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद

## आवश्यक अध्यापकीय गुण

अध्यापक पुरातन काल से ही मानव सभ्यता के विकास का पथप्रदर्शक व प्रमुख कारक रहा है। अध्यापक का स्मरण होते ही अरस्तू, प्लेटो, महात्मा गांधी, डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णनन, डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम जैसे व्यक्तित्वों का स्मरण होता है जिन्होंने व्यक्तित्व के हर पक्ष को छुआ है, ताकि शिक्षण प्रक्रिया एक सम्पूर्णता में रहे। गांधीजी ने पूरे विश्व को स्वराज, स्वाभिमान व अहिंसा की शिक्षा दी। हमारे पूर्व राष्ट्रपति अब्दुल कलाम ने बच्चों व राष्ट्र को सपने देखने व उन्हें साकार करने की प्रेरणा दी है। योग्य व प्रेरक अध्यापक देश व समाज की तस्वीर बदल सकता है। इसलिए किसी भी देश के लिए आवश्यक है कि वह योग्य, दक्ष व प्रेरक अध्यापक तैयार करे। इसलिए कहा जाता है कि कोई भी देश उतना ही अच्छा होता है जितने अच्छे उसके अध्यापक होते हैं। वर्तमान सदी में तकनीक व ज्ञान के तीव्र विकास ने अध्यापकीय दायित्व को और गंभीर बना दिया है। आज के इस भूमण्डलीकरण के युग में चुनौतियां वैश्विक हैं। विद्यार्थियों का मूल्यांकन वैश्विक मानकों पर होता है जहां असफलता या आंशिक सफलता का अर्थ है विकास के पायदान पर नीचे उतरना जिसके व्यापक प्रभाव अर्थव्यवस्था पर पड़ते हैं और सम्पूर्ण राष्ट्रीय विचार व चारित्र को प्रभावित करते हैं। अतः आवश्यक है कि अध्यापक का दायित्व निर्वहन कर रहा या अध्यापक बनने की ओर अग्रसर व्यक्ति इस तथ्य से अवगत रहे कि अच्छे व प्रभावी अध्यापक बनने के लिए कुछ आवश्यक गुण का समावेश अपने व्यक्तित्व व आचरण में करें।

अतः अध्यापन कर रहे व्यक्तियों या अध्यापन को व्यवसाय के रूप में चुन रहे व्यक्तियों, अध्यापक प्रशिक्षण में संलग्न संस्थाओं तथा शिक्षण से जुड़ी प्रबन्धन संस्थाओं को सदा अच्छे अध्यापकीय गुणों के विकास, परीक्षण व पुनर्पोषण के लिए सदा तत्पर व तैयार रहना आवश्यक है, क्योंकि अध्यापक पूरी पीढ़ी को प्रभावित करता है। अध्यापन व्यवस्था में स्वेच्छा से आये या अन्य कारणों से अध्यापन को अपनानेवाले सभी व्यक्तियों को व्यक्तिगत स्तर पर भी अध्यापकीय गुणों के विकास का सतत प्रयास करते रहना चाहिए तभी इस महान् कार्य का सम्पूर्ण आनन्द व फल प्राप्त किया जा सकता है।

**कुलदीप गैरोला**
विभागाध्यक्ष (शोध एवं मूल्यांकन), सीमैट, राज्य परियोजना कार्यालय,
देहरादून, (उत्तराखंड)

## ताज़ी हवा का झोंका

बुनियादी शिक्षा का 20 वां अंक मिला। हमेशा की भांति पूरे अंक के पन्ने पलटे। विचार किया कि इसमें से क्या हमारे शिक्षक को पढ़ने को दिया जाए। मैंने इस अंक में से हृदय कांत दीवान का लेख शिक्षा में साझेदारी... वाला खुद से पढ़ा और मुझे महसूस हुआ कि अपने शिक्षकों को इसकी ज़ेराक्स करवाकर देनी चाहिए। हम सबने फिर मिलकर इस लेख को पढ़ा। हां, एक बात और कि इसके पहलेवाले अंक में ''सामुदायिक भागीदारी के मायने'' को भी पढ़ा गया और सबने इस मसले पर चर्चा की।

हम ''संपर्क'' में बुनियादी स्कूल चलाते हैं। इस स्कूल में आपके द्वारा प्रकाशित पत्रिका हमारा मार्गदर्शन करती है। पत्रिका का हमारे यहां पहुंचना ताज़ी हवा के झोंके के समान है। इसमें शामिल सामग्री का उपयोग हम स्कूल में अलग–अलग तरीक़े से करते हैं। पिछले दो अंकों से कार्टून शुरू किए हैं जो गागर में सागर के समान है।

**प्रक्षाली देसाई**
संपर्क
रायपुरिया, जिला– झाबुआ (म.प्र.)

**खरी-खरी**

# नई तालीम : अनसुलझे सवाल

★ सुदर्शन आयंगार

**नई तालीम पर एक विमर्श सेवाग्राम वर्धा में राष्ट्रीय ग्रामीण परिषद् संस्थान, हैदराबाद (एनसीआरआई) के तत्त्वाधान में किया गया था। नई तालीम की दशा और दिशा पर बहुत कुछ चर्चाएं हुईं। गूजरात विद्यापीठ के कुलनायक (वाइस चांसलर) सुदर्शन आंयगार ने नई तालीम और इसके बरअक्स सटीक टिप्पणियां की हैं। यहां उनके द्वारा व्यक्त विचारों को हल्का–फुलका संपादित कर प्रस्तुत किया जा रहा है–**

मैं यह कहना चाहता हूं कि बच्चों को जो भी पढ़ाया जाए वह अनिवार्य रूप से उद्योग या हस्तशिल्प को केंद्र में रखकर पढ़ाया जाए। आप मुझसे पूछ सकते हैं कि मध्यकाल में तो हमारे देश के बच्चों को हल और शिल्प के माध्यम से ही पढ़ाया जाता था। यदि इस बात से हम सहमत हो जाएं तो फ़िलहाल इस देश में उद्योग और किसी ट्रेड के माध्यम से शिक्षा के बारे में नहीं सोचा जा रहा है। इस कारण से मेरा आत्म निवेदन यही है कि हर हाल में बच्चों को दस्तकारी और उद्योग पढ़ाने के बजाए उनको इनके माध्यम से शिक्षा दी जाए। हम तकली का ही उदाहरण लें। तकली छात्रों के लिए पहला पाठ होगा। तकली के माध्यम से हम छात्रों को कपास का इतिहास बताते हुए लंकाशायर और ब्रिटिश साम्राज्य का इतिहास बता सकते हैं। इसके माध्यम से तकली की ताक़त और उसकी उपयोगिता की बात कर सकते हैं। इसकी समाज में क्या भूमिका हो सकती है यह जानने का अवसर बच्चों को मिल सकता है। इस प्रकार से तकली से खेल–खेल में काफ़ी कुछ सीखा जा सकता है। इस तकली से काम करते हुए बच्चा गणित का ज्ञान भी प्राप्त कर सकता है। इस प्रक्रिया में बच्चा गिनती सीख सकता है कि तकली के कितने फेरे चलाए। कितना कपास उपयोग में आया। कितना सूत बनाया। इस तकली की सुंदरता इस बात में है कि बच्चे के दिमाग़ पर इसका कोई बोझ नहीं होगा। जब वह खेलते हुए, गाते हुए तकली चलाएगा तो वह कुछ कमाने की तरफ़ भी अग्रसर हो सकता है। इस मुख्य बात को हम आज तक नहीं पकड़ पाए।

सन् 1937 में जो कुछ तय हुआ उस समय 7 प्रदेशों के शिक्षण प्रधान भी मौजूद थे और उन्होंने यह तय किया कि वे अपने–अपने राज्यों में जाकर इस बारे में नई दिशा ज़रूर खोलेंगे और शिक्षकों के प्रशिक्षण महाविद्यालय खोलने की बात हुई। पर 1937 और 1947 के दरम्यान 10 सालों में क्या जादू हुआ इस देश में कि हम बुनियादी शिक्षा की समस्त बातों को बिल्कुल भूल गए। ये क्यों हुआ होगा? ये सिर्फ़ इसलिए हुआ क्योंकि तब तक इस देश में एक बहुत बड़ा तबका शासक वर्ग में पहुंच गया था। वह इस बात को मानकर चल रहा था कि नई तालीम बकवास है। बहुत सीधे–सादे शब्दों में कह रहा हूं।

★ गूजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद के कुलनायक है।

असंबंधित लोगों के हित के चलते नई तालीम को लेकर हमलोग कुछ नहीं कर पाए। गुजरात एक ऐसा प्रमुख राज्य है जो गांधी का अपना ''देश'' कहलाता है और संख्या की दृष्टि से आज भी नई तालीम या बुनियादी तालीम की सबसे ज़्यादा संस्थाएं वहां हैं। इन सब बातों को लेकर हमको थोड़ा बहुत बल मिला है। और शायद एनसीआरआई को भी यही लगा है कि जब गुजरात में इतनी संस्थाएं हैं तो गूजरात विद्यापीठ को थोड़ा हिलाया जाए कि इस दिशा में आप लोग कुछ करिए। परंतु सबसे ग़लत बात यह हो गई कि हमने इसको वैकल्पिक धारा समझ लिया है। जबकि कहीं पर भी ये वैकल्पिक धारा की बात थी ही नहीं। सन् 1937 की जो सभा हुई, उसकी जो रिपोर्ट थी जो जाकिर हुसैन साहब ने तैयार की

थी उसको भी हम पढ़ सकते हैं। उन्होंने बहुत स्पष्ट लिखा कि हमको व्यावसायिक शिक्षा नहीं देना है, हमको अकादमिक शिक्षा को व्यावसायिकता से जोड़ना है। ये भेद हम अभी भी कर रहे हैं। और जब तक हम यह भेद समाप्त नहीं करेंगे, नई तालीम की दिशा में नहीं जा पाएंगे क्योंकि उसका एक पश्चिमी स्वरूप तो आ गया व्यावसायिक प्रशिक्षण का और बड़े पैमाने पर इस देश ने कर दिया। उसका नाम है आईटीआई। नई तालीम के विचार के साथ–साथ आईटीआई कैसे और कितनी सामंजस्य बिठाए थी, यह सवाल किसी ने नहीं उठाया। वह इसलिए नहीं उठाया क्योंकि नई तालीम की बात को हम इस देश के विकास के समग्र दर्शन में लाना ही नहीं चाहते थे। नई तालीम समाज के विकास के दर्शन के साथ जुड़ी हुई है और यह तय हो गया था कि गांधी विचार का समग्र विकास दर्शन जो है वह इस देश के लिए चलनेवाला नहीं है और इसको चलाया नहीं जाएगा। सभी लोगों ने तय कर दिया कि ये नई तालीमवाली बात चलनेवाली नहीं है। जो चल रहा है जिस तरह से पश्चिमी सभ्यता की शिक्षा की अपनी समझ है, औद्योगिक समाज  क़ायम करने के लिए शिक्षा तंत्र तो वही आएगा। इसीलिए आपको कुछ लोगों को तकनीकी मामलों में गांव के ग़रीब–ग़ुरबों के लिए अगर कुछ करना है तो आईटीआई खोल दीजिए। टर्नर, फिटर, इलेक्ट्रिशियन बन जाएंगे, प्लंबर बन जाएंगे, कुछ सीख जाएंगे। उनको, आपको भौतिकशास्त्र में शोध कराने की क्या ज़रूरत है। इसलिए हम नई तालीम को लेकर तब भी कुछ ख़ास कर नहीं पाए।

1964 में एक और मौक़ा कोठारी कमीशन के ज़रिए आया। शिक्षा आयोग के बड़े ईमानदार आदमी दौलत सिंह कोठारी थे जिन्होंने बड़ी नायाब रिपोर्ट लिखी। इसमें कहा कि जिस शिक्षा में काम का अनुभव न हो उस शिक्षा को दूर करें। कार्यानुभव हर स्तर पर और प्रकार की शिक्षा में अत्यंत ज़रूरी हो। वह मौक़ा भी हमने खो दिया क्योंकि हम नहीं चाहते थे कि कहीं भी एक विशिष्ट समूह के लिए जो शिक्षण व्यवस्था बनी हुई है उसमें कहीं हाथ मैले करने की नौबत आए। एक तो ये मानसिकता का सवाल था और दूसरे हमारे विकास के दर्शन का सवाल था। दोनों में यह बात नहीं बैठ रही थी।

गुजरात का और अन्य प्रदेशों का थोड़ा अनुभव ले लें कि दो साल में हमारा क्या अनुभव रहा है। मैंने ईपीडब्ल्यू नामक पत्रिका में दो बार विज्ञापन किया कि जो लोग शिक्षा में काम कर रहे हैं उनको नई तालीम की शिक्षा के बारे में अगर बात करनी है तो ऐसे जवान लोग जिनको मैं 15 हजार रुपए तक की सहायता दे सकता हूं, वे गूजरात विद्यापीठ से सम्पर्क करें! यक़ीन मानिए कि मेरे पास कुल मिलाकर सिर्फ़ तीन आवेदन आए।

अब गुजरात की नई तालीम की थोड़ी लम्बी बात करेंगे क्योंकि दो बातें हैं इसमें और राज्यों का अभी मेरे पास अनुभव इकट्ठा नहीं हुआ है। और दूसरा कि अभी हम पड़ोसी राज्य राजस्थान के विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र, उदयपुर के साथ जुड़े हैं। इनसे जुड़कर उनकी एक जो पत्रिका निकल रही है उसमें भी हम सहयोग दे रहे हैं। दोनों ने मिलकर नई तालीम की संस्थाओं का अध्ययन करने के लिए एक प्रश्नावली तैयार की है। इस प्रश्नावली को विभिन्न तरीक़ों–मसलन बुनियादी शिक्षा की पत्रिका के माध्यम से और पत्रों के माध्यम से देशभर की नई तालीम की संस्थाओं को भेजकर उनसे विस्तार से जानकारी मांगी है। इस पर काम अभी जारी है।

कुल मिलाकर मैं आपको यह बताना चाहता हूं कि संख्या की दृष्टि से देखा जाए तो गुजरात से बाहर की कुल मिलाकर 58 संस्थाएं हैं जिन्हें नई तालीम के नाम से जाना जाता है। उनको हमने प्रश्नावली भेजी। इसी प्रकार से गुजरात में 1776 संस्थाओं को यह प्रश्नावली भेजी। कुल मिलाकर 1800 के क़रीब प्रश्नावली हमने अलग–अलग संस्थाओं को भेजी है। दरअसल यह संख्या कम नहीं है। ये जो 1800 प्रश्नावली हमने भेजी है इसका थोड़ा सा मैं आपको विश्लेषण भी दे देना चाहता हूं। जैसाकि गुजरात बड़ा समृद्ध दीख रहा है। हमारे मुख्यमंत्री तो उसको नम्बर वन का दर्जा देते हैं। ख़ुद भी अव्वल होना चाहते हैं और राज्य को भी अव्वल दर्जे का देखते हैं।

अब ये नई तालीम या बुनियादी तालीम की संस्थाएं सरकारी काग़ज़ों के अनुसार हैं। ये संस्थाएं गांधी शिक्षा विचार के अनुसार नहीं हैं। यह नौबत क्यों आई? यह नौबत इसीलिए आई कि आज़ादी के बाद इस देश में एक ऐसी भावना पैदा हो गई कि अब तो अपनी सरकार है, अपना राज है इससे पैसा लेने में कोई मुश्किल नहीं है। बिल्कुल गांधी विरोधी बात। सरकार चाहे जिसकी हो, राज्य चाहे जिसका हो, नई तालीम की बुनियादी बात यह थी कि नई तालीम की शिक्षण संस्थाएं वे होंगी जो समुदाय चलाएंगे और उस समुदाय में उत्पादन का काम होगा। उस उत्पादन से स्वावलम्बी संस्थाएं बनेंगी। अगर ज़रूरत पड़े और कम पड़ेगा तो समाज से दान मांगकर अपना काम निकाल सकते हैं। सरकार से फूटी कौड़ी नहीं लेंगे यह बात गांधीजी ने नहीं कही थी। विडंबना की बात यह है कि इस तथ्य को हम बिल्कुल भूल गए। मज़े की बात यह है कि एनसीईआरटी के तत्त्वावधान में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या–2005 के संदर्भ में कामकेंद्रित शिक्षा के लिए फ़ोकस समूह ने जो रिपोर्ट लिखी, वह पढ़ने लायक है। उसमें यह कहा गया है कि गुजरात एक ऐसा प्रदेश है जिसमें गांधी विचारवाले और नई तालीम के विचारवालों की सरकारें बनीं और बाद में तो एक मंत्री भी बने जो ऐसी ही एक संस्था चलाते थे। बावजूद इसके गुजरात में नई तालीम मुख्यधारा में नहीं आ सकी।

ऐसा क्यों नहीं हुआ, इसके अलग कारण हैं। पर इसके अंदर मूल बात जो थी वह यह कि जब गुजरात में सरकार बन गई तब नई तालीम की संस्थाओं ने सोचा कि हमको अब अनुदान के लिए सरकार के पास चलना चाहिए। शुरुआत हुई 50 प्रतिशत के अनुदान से। धीरे–धीरे बात बढ़ते–बढ़ते यह हुई कि 50 प्रतिशत में गुज़ारा अब नहीं होता महंगाई बढ़ गई है तो 100 प्रतिशत अनुदान दिया जाए। आज के संदर्भ में देखें तो महान् आदमी को छोड़कर इस देश का आम आदमी मन्दिर–मस्जिद के लिए तो पैसे दे देता है, पर शिक्षा के लिए नहीं देता है। तो गांधी के समय में भी लोग दान के बारे में ऐसा ही सोचते होंगे। इसीलिए संबंधित लोगों ने सोचा होगा कि यह सरकार से अनुदान मिलने का तरीक़ा जो कि शॉर्टकट है, बेहतर है। पैसा सरकार से मिल जाए तो अच्छा है। और इस प्रकार से अपना लिया शत प्रतिशत अनुदान का रास्ता। उसके बाद इसका राजनीतीकरण हो गया। एक मौक़ा ऐसा आया 1980 के बाद का कि गुजरात का नई तालीम का काल स्वर्णकाल कहलाया जाने लगा। दरअसल अनुदान की दृष्टि से क्योंकि उसके बाद आदिवासी इलाक़ों में और पिछड़े इलाक़ों में जितने एमएलए अपनी राजनैतिक वफ़ादारी साबित कर देते थे उनको 5 साल के बाद एक पेंशन स्कीम मिला करती थी जिसका नाम था बुनियादी विद्यालय। और इसका अनुदान पक्के तौर पर मिलता रहता है। इसमें एक शर्त है कि 120 विद्यार्थी रजिस्टर पर होने चाहिए, जो होते हैं। तो फिर आप कभी चले जाइए 20 विद्यार्थी भी हो सकते हैं, 40 भी। तो इस तरह से

सरकारी अनुदान आ गया। शनैः–शनैः गुजरात में भी नई तालीम से बुनियादी तत्त्व का लोप हो गया और तंत्र रह गया। अब इससे ज़्यादा कोई नई बात हम इस शोध अध्ययन से निकाल लेंगे, ऐसा नहीं है। पर हो सकता है कि कहीं पर कुछ लोग अपने तरीक़े से कुछ नया कर रहे हों, जो आदमी की फ़ितरत है।

मुख्यतः जो धारा चल रही है उस धारा में इस अनुदान ने नई तालीम की आत्मा को समाप्त कर दिया है। अब तो नई तालीम की संस्थाओं की मांग सरकार से यह है कि आप छात्रालय में रहने वाले प्रति छात्र के लिए 450 रुपए की जो अनुदान राशि देते हैं वह कम है उसको बढ़ाकर 600 रुपए की जाए क्योंकि इससे बच्चों को खिला–पिला नहीं सकते हैं। मैं अब यह समझता हूं कि सेवाग्राम में बापू की कुटीर के पास बैठकर मैं बोल रहा हूं, कहीं बापू सुन रहे होंगे तो दुःखी हो जाएंगे कि तुम अपना अनाज, दूध और सब्ज़ी नहीं उगा सकते हो तो तुमको ये बुनियादी तालीम के स्कूल खोलने की क्या ज़रूरत थी? पर हमारे किसी भी संचालक को यह आवाज़ सुनाई नहीं दे रही है। हम जिस परिस्थिति में बैठे हैं उसमें नई तालीम की अगर कोई परिस्थिति है तो वह यह कि उसे एक अलग अनुदान की फ़ाइल में दर्ज कर दिया गया है। इससे ज़्यादा उसका अस्तित्व इस राज्य में या और राज्यों में है या नहीं मैं नहीं समझता।

यहां से हमको आगे बढ़ने की बात करनी है। तो मूलतः हमने क्या खोया है? सबसे पहली बात तो यह खो दी कि कोई भी बुनियादी विद्यालय बिना किसी ज़मीन के इस तरह अस्तित्व में आया, यह सवाल उठाना चाहिए। अगर आपके पास खेती, गोपालन के लिए ज़मीन नहीं है या जंगल नहीं है तो कैसे बुनियादी शिक्षा को स्थापित कर सकते हैं। मैं तो कहता हूं छोड़िए ज़मीन और गोपालन की, आदिवासी क्षेत्रों के अंदर सरकार की किस प्रकार की तैयारी है। अब देखिए, जिन आदिवासियों ने अपने वनों में रहकर सदियां गुज़ारी हैं उनको रातों–रात जब से इंस्पेक्टर जनरल ऑफ फॉरेस्ट आए तो उन्होंने कह दिया कि तुम लोग हो कौन? ये सारे जंगल तो हमारे हैं। निकलो यहां से। हो जाओ बेदख़ल। और आज तो ऐसी परिस्थिति है कि पार्लियामेंट अभी कानून बना रही है कि भई जिसने चोरी, डकैती से जंगल की ज़मीन बो दी हो और उसमें हल चला दिया हो अगर उसके पास वह दंडवाली रसीद मिल जाए तो उसके नाम से ज़मीन कर देना। यह तो इस देश की हालत है। इस देश में तो सरकार सबसे बड़ा ज़मींदार है। राज्य कभी भी ऐसी शिक्षा नहीं चला सकता। न बाज़ार चला सकता है। ये बात हम बिल्कुल स्पष्ट समझ लें। यहां हमारे परिप्रेक्ष्य की बात फिर से होगी जब गांधीजी ने नई तालीम की भूमिका रखी थी उनके बारे में, उनके विकास के दर्शन के बारे में, समाज के विकास के दर्शन के बारे में। समाज अपनी शिक्षा करता है। देखिए, उन्होंने बड़ी सफ़ाई से ये बात रखी थी कि हो सकता है कि 150 साल पहले इस देश में बाप अपने बच्चे को अपना व्यवसाय और दस्तकारी सिखाता था। सिर्फ़ व्यवसाय और दस्तकारी सिखाता था क्योंकि उसके लिए केवल जीविकोपार्जन का मामला था। उसमें ज्ञान का तत्त्व नहीं था और जब हम उसमें ज्ञान का तत्त्व जोड़ देते हैं तो वह मेरे हिसाब से नई तालीम हो जाती है। आगे के विकास के लिए और समाज के विकास के लिए यह ज़रूरी है।

दरअसल नई तालीम एक गहना है। यह गहना हमें बहुत दिखाया जा रहा है। नई तालीम गांधीजी का गहना है। जिस तरह से प्रदर्शनी में किसी ख़ास चीज़ को रख देते हैं और उसको हम देखते हैं उस तरह से इसको भी रख देंगे कि इस देश में एक नई तालीम चल रही है। कुछ संस्थाएं हैं वह 1800 से 2000

हो जाएंगी, 2500 हो जाएंगी। बाक़ी पांच लाख गांवों के अन्दर जो हम नई तालीम के स्कूलों की बात कर रहे थे उसका क्या हुआ? साथ ही साथ सबसे बड़ी चुनौती जो हमारे सामने है वह यह कि हम समाज को किस तरफ़ ले जाएंगे?

जितनी ज़्यादा हम शहरीकरण की बात करेंगे, उतनी ही ज़्यादा उसके लिए नई तालीम बेकार है। यह बात हक़ीक़त है। अब कोई रास्ता है, अगर इतनी ही निराशाजनक परिस्थिति है तो हम यहां पुनरुद्धारीकरण यानेकि रिवाइवल की बात कर रहे हैं। तो सवाल इस बात का है कि इसका पुनरुद्धार करना है तो उसकी नीति क्या होगी? इस बात में अगर कोई दम है कि इस पुनरुद्धार रणनीति के चलते क्या हम सोच सकते हैं कि इस देश में जो सरकारी तंत्र की व्यवस्था है, जिसमें मंत्री हैं वे ठीक हैं?

मेरी शुरुआत की ज़िन्दगी में एक अनुभव हुआ। मुझे एक काम दिया गया था। ज़िले के प्रशासन के प्रबंधन। शुरुआत में भारत सरकार ने कहा कि भई, ये थोड़ा सा कर दो। हमने बहुत सारे प्रशिक्षण कर दिए सरकारी अधिकारियों के ज़िला स्तर पर। जिस दिन कलेक्टर को समझ में आता था कि यह सुदर्शन ठीक बात कर रहा है। तो उस दिन से वे एक व्यवस्था लागू कर देते थे। जिस दिन कलेक्टर बदल जाता था उस दिन पूरी बात ख़त्म। नए सिरे से हम कलेक्टर साहब को समझाते थे कि सर, ये बात है तो यह व्यवस्था के स्तर पर लागू करना है, व्यक्ति स्तर पर नहीं करना है। तो इस देश के मंत्रालय को, जो कुछ सरकार है उसको कम से कम यह पहली बात समझनी पड़ेगी। मैं इसे ऑटोनोमी के मुद्दे को जोड़कर देखता हूं।

जिस दिन मैं गूजरात विद्यापीठ का कुलनायक बना तब मैंने अपने पहले दीक्षांत समारोह में वक्तव्य दिया कि मैं चाहता हूं कि भारत सरकार को एक चिट्ठी लिख सकूं कि मैं आपका शुक्रगुज़ार हूं कि आपने 1963 से लेकर इतने सालों तक गूजरात विद्यापीठ को अनुदान दिया। कृपया आनेवाले साल से आप अनुदान न दें। हम अपने आपमें सक्षम हैं इस संस्था को चलाने के लिए। मेरा दुर्भाग्य है कि मैं ऐसी चिट्ठी नहीं लिख सका क्योंकि मेरे 150 शिक्षक और 2500 ग़ैरशैक्षणिक कर्मचारी जो हैं। वे चौथे, पांचवें, छठे सारे वेतन आयोगों के पीछे लगे हुए हैं। नहीं होगी नई तालीम। तब ऑटोनोमी नहीं रहेगी। ऑटोनोमी तब रहेगी जब मुझे अपने तरीक़े से काम करने की स्वतंत्रता हो। और हमारी तैयारी हो मंडल की, कि हम कहें कि अनुदान नहीं मिलेगा तो भी हम चलाएंगे। 2000 नहीं 200 विद्यार्थियों से चलाएंगे। इतने लोगों को ही हम तैयार करेंगे। यह मानसिकता बहुत ज़रूरी है।

आज की परिस्थिति में नई तालीम की संस्थाओं की हालत अच्छी नहीं है, एक बात। दूसरी बात जोड़ दूं पश्चिमी समाज की जहां औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली को हमने रोक दिया था, वह आज वहां रुक नहीं गई है। वह आगे बढ़ गई है, क्योंकि वह एक गतिशील व्यवस्था है। वह स्थिर नहीं है। वह गतिशीलता हमको यहां भी लाना है। आज सिर्फ़ हम तकली को लेकर नहीं चल पाएंगे, आज सिर्फ़ हम खेती को लेकर नहीं चल पाएंगे। आज जिस परिस्थिति में हम बैठ गए हैं, उस परिस्थिति में जैसे ऊर्जा की बात हुई, बहुत महत्त्वपूर्ण बात है। छोटे से विकास की भी आज हम बात करेंगे तो वह ऊर्जा की बात हमारे लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है।

# ज्ञान का सृजन

★ नंदकुमार

शिक्षा का उद्देश्य क्या है? यदि सामान्य जनता की भाषा में सोचें तो शिक्षा प्राप्त करने के बाद नौकरी लगनी चाहिए। पालकों का यह भी कहना होता है कि पढ़े–लिखे युवाओं और अनपढ़ युवाओं के हाव–भाव, आचार–व्यवहार तथा पैसा कमाने की क्षमता में कोई अंतर नहीं होता। ऐसे में बच्चों को पढ़ाने स्कूल भेजने का क्या मतलब है? इस प्रश्न का उत्तर शिक्षक, शिक्षा विभाग के अन्य लोग तथा अन्य पढ़े–लिखे लोगों के पास भी नहीं होता। इस प्रश्न का उत्तर ज्ञान की सृजनात्मकता में छुपा हुआ है।

ज्ञान के सृजन को अभी हमने उपयोगिता के सिद्धान्त के रूप में देखा। सही शिक्षा वही है जो हमारे जीवन के स्तर को ऊपर उठाए। अधिकांश लोग जीवन के स्तर को जीवन के आर्थिक स्तर के समतुल्य मानते हैं। अतः शिक्षा से आय उपार्जन में मदद मिलनी चाहिए अर्थात् शिक्षा की उपयोगिता का महत्त्व पहले आय उपार्जन है। शिक्षा का दूसरा पहलू है ''ज्ञान अर्जन।''

ज्ञान अर्जन का सीधा संबंध अर्थ अर्जन से हो यह ज़रूरी नहीं। परंतु यह आवश्यक है कि ज्ञान अर्जन में जो सक्षम है वह अर्थ अर्जन करना जानता है। यह ज़रूरी नहीं कि वह ज्ञान अर्जन कर ले। इसलिए शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान अर्जन ही होना चाहिए। आर्थिक अर्जन उसका बोनस है या बाई–प्रोडक्ट।

हम ज्ञान अर्जन कैसे करते हैं? जब पालने में पड़ा छोटा बच्चा घंघरूयुक्त खिलौने को चबाता है तब वह खिलौने, स्वाद, नरम–कड़ा इत्यादि के बारे में ज्ञान अर्जन कर रहा होता है। पियाजे के अनुसार, जब बच्चा उस खिलौने को हिलाता है तो वह उसकी आवाज़ के बारे में ज्ञान अर्जन कर रहा होता है। धीरे–धीरे हिलाने से कैसी आवाज़ आती है? ज़ोर से हिलाने से कैसी आवाज़ आती हैं? फेंक देने से कैसी आवाज़ आती है? पास फेंकने से कैसी आवाज़ आती है? दूर फेंकने से कैसी आवाज़ आती है? इसी ज्ञान अर्जन की कड़ी में जब बच्चा खिलौने को फेंकता है वह एक प्रयोग कर लेता है। अब वह दूसरे प्रयोग के लिए तैयार रहता है। परंतु खिलौना उससे दूर पड़ा होता है। उसे पाने के लिए वह रोता है। चूंकि अभी वह प्रयोग कर रहा होता है इसलिए मां द्वारा खिलौना पकड़ा देने पर उसे वह फिर फेंकता है। प्रयोग शृंखला में वह कई बार खिलौने को फेंकता है परंतु मां चिड़चिड़ाती है वह उसे बार–बार खिलौना नहीं देती। एक–दो बार देने के बाद बच्चे को कुछ अन्य तरीक़े से वह चुप कराने का प्रयास करती है। मां बच्चे के ज्ञान अर्जन में रोड़े अटकाती है। यहां पर बच्चा ज्ञान का निर्माण कर रहा था। वह आवाज़, स्वाद, कड़ा–नर्म, दूर–पास, धीमी–तेज़ का स्वयं के लिए अर्थ उक्त प्रयोग के द्वारा तैयार कर रहा था। जब हम बच्चों के सामने गाते हैं–

हिंद देश के निवासी, सभी जन एक हैं।
वेश–भूषा, रंग भाषा चाहे अनेक हैं।

इसे सुनने के बाद यदि बच्चा मनन करे तो वह पाता

★ सचिव, स्कूली शिक्षा विभाग, मंत्रालय, रायपुर, छत्तीसगढ़। शिक्षा के मुद्दों पर नियमित लेखन करते

है कि यह झूठा है। उसका अभी तक का ज्ञान अर्जन इस वाक्य को मानने से मना करता है। अपने गांव, मोहल्ले में ही वह जातिवाद, धर्मान्धता, आर्थिक विषमता, अन्याय, लिंगभेद सब देखते हुए बड़ा होता है इसलिए उसका पूर्व ज्ञान उसे पचा नहीं पाता। अतः यह पॉलीथीन के अंदर बंद दवाई के कैप्सूल को निगलने के बराबर है। हम जो दवाई खाते हैं उसका आवरण पेट के भीतर चंद मिनटों में घुल जाता है। इसलिए हम पर दवाई का असर होता है यदि कैप्सूल का आवरण नहीं घुला तो हम पर दवाई का कोई असर नहीं होगा और हमारी बीमारी दूर नहीं होगी। उल्टे वह कैप्सूल यदि विष्ठा के साथ बाहर नहीं निकला तो अन्य बीमारियां पैदा करेगा।

हमारी शिक्षा द्वारा उक्त प्रकार के दिए जानेवाले कैप्सूल बच्चों के जीवन में कोई असर नहीं करते। इसलिए लिखे–पढ़े और अनपढ़ों में कोई ख़ास अंतर नहीं दिखता। अंतर तो तब दिखेगा जब बच्चा इन वाक्यों का विश्लेषण करे, उनकी समाज की वास्तविकता से तुलना करे और फिर तय करे, सुदृढ़ निश्चय करे कि जब वह बड़ा होगा तो स्वयं ऐसे असमानता का निर्माण नहीं करेगा। उल्टे वह असमानताओं को दूर करने के लिए क्रियाशील होगा। यदि उक्त वाक्यों को गाने के बाद इस प्रकार का ज्ञान सृजन नहीं होता तो उसका स्कूल आना बेकार है। स्कूल में बिताया हुआ समय बर्बाद, शिक्षकों को दिया गया वेतन बेकार तथा शिक्षकों के एक मानव के रूप में उस गाने पर व्यतीत समय निरर्थक। यदि हमारी शिक्षा व्यवस्था इस प्रकार की शिक्षा दे रही है तो हम बहुत धन, बहुत से जीवन तथा राष्ट्र को बर्बाद कर रहे हैं। अतः ज्ञान का सृजन रटानेवाली शिक्षा व्यवस्था के विपरीत है। ज्ञान का सृजन शिक्षारूपी कैप्सूल का वास्तविक जीवन में उपयोग चाहती है। जबकि रटानेवाली शिक्षा पॉलीथीन पैक कैप्सूल की तरह है जो खा लेने पर भी बीमारी ठीक नहीं करेगी। फिर आप कितने ही कैप्सूल क्यों न खाएं। अर्थात् कितने ही विषय पढ़ें, और कितनी ही परीक्षाएं पास करें। हमने देखा कि हर कोई ज्ञान का सृजन करता है। वह कैसे? कोई सोचे कि क्या गांव या बस्ती का व्यक्ति भी ज्ञान का सृजन करता है। इसके लिए हमें जानकारी या सूचना, और ज्ञान में अंतर समझना आवश्यक है। सूचना तभी ज्ञान बनती है जब हम उस पर विश्वास करते हैं। विश्वास करने पर जब हम अपने उस अनुभव को विश्व में लाने की हिम्मत नहीं रखते अर्थात् उस पर विश्वास नहीं करते तो वह जानकारी मात्र रह जाती है। ऐसी जानकारी से कोई लाभ नहीं। वह उपयोगिता के सिद्धान्त में फ़ेल हो जाती है। ज्ञान अर्जन अवधारणा निर्माण का एक संकलन है। वह आगमन तथा निगमन से बनता है। किसी बच्चे ने देखा कि माता और पिता घर में रसोई का कोई भी कार्य करने के लिए बहन को बुलाते हैं और बाज़ार का कार्य करने के लिए भाई को। उसने पड़ोस के घरों में भी लड़कियों को रसोई और झाड़–बुहार का काम करते देखा और लड़कों को बाज़ार का। अपने रिश्तेदारों के यहां भी उसने यही चलन देखा। अतः स्वयं से तर्क कर वह इस निष्कर्ष पर पहुंचेगा कि लड़कियां घर का काम करती हैं और लड़के बाज़ार का और बाहर का उसकी ऐसी अवधारणा बन जाती है। अतः ज्ञान अर्जन के लिए हमेशा ही स्कूल, कॉलेज, शिक्षक या गुरु की आवश्यकता नहीं होती। मनुष्य अपने वातावरण से ज्ञान का अर्जन करता ही है। यही बच्चा जब बड़ा होगा और वही परिस्थितियां उसके सामने आएंगी और पुराने चलन को दोहराते हुए वह लड़के और लड़कियों में भेदभाव करने लगेगा। यदि शिक्षा प्रभावशाली है तो उसके ज्ञान अर्जन में कुछ नया जुड़ेगा। कई लड़कियां कई क्षेत्रों में सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं यह दिखाना पड़ेगा। लड़कियों के पढ़–लिख जाने से और काम करने

से देश, समाज और घर किस प्रकार की तरक़्क़ी कर सकेंगे, इसकी संभावनाएं बतानी पड़ेंगी। ऐसे कई उदाहरण बताने होंगे जबकि लड़कियों और लड़कों को अपने प्रति फैली रूढ़िवादी अवधारणाओं के कारण कई नुक़सान उठाने पड़ते हैं। तब तक इस विषय पर चर्चा जारी रहेगी। जब तक उसकी अवधारणा यह नहीं बन पाती कि लड़के–लड़की में भेद निरर्थक है और समाज द्वारा रचित है। यदि वह इस संदर्भ में बदलाव लाता है तो इसका अर्थ है ज्ञान का सृजन हुआ। बच्चा जब पैदा होता है तब उसे कोई भाषा नहीं आती है। वह बच्चा जब स्कूल आता है तब वह कम से कम एक भाषा या बोली जानता है। वह बिना शिक्षक के, बिना स्कूल के ज्ञान का अर्जन करता है। ज्ञान का सृजन करता है। स्कूल का उद्देश्य इस ज्ञान सृजन की प्रक्रिया को गतिशीलता प्रदान करना है। नई जानकारी यदि दी गई तो उसका भी उद्देश्य बच्चे के सृजित ज्ञान में परिवर्तन लाना तथा ज्ञान सृजन में गतिशीलता लाना ही होता है। इसलिए भाषा सीखते समय बच्चा मां को ''मां'' कहना कैसे सीखता है? यह समझना आवश्यक होगा। मां शब्द को सीखने के पूर्व उसे कोई भाषा नहीं आती तब भी बच्चा भाषा सीखता है। कैसे? जब बिना भाषा जाने बच्चा भाषा सीख लेता है तब वही बच्चा अंग्रेज़ी सीखते समय एक भाषा का ज्ञान होते हुए भी कठिनाई महसूस करता है। क्यों? कहीं हमारा पढ़ाने का तरीक़ा तो ग़लत नहीं? ज्ञान के सृजन और अभिव्यक्ति के भरपूर अवसर देकर हम शायद अंग्रेज़ी का सीखना और सिखाना दोनों ही आसान कर सकते हैं।

यदि मैं आपको 200 में से 188 घटाने के लिए कहूं तो संभावना है कि 200 में से 188 सीधे–सीधे (200–188) लिखकर न घटाएं। परंतु आपका उत्तर अवश्य 12 आएगा। यह उत्तर सही है। परंतु उस उत्तर तक पहुंचने का तरीक़ा स्कूल में पढ़ाए गए तरीक़े से भिन्न है। जब आप गणित हल करने के लिए नए तरीक़े खोज सकते हैं तो आप वैज्ञानिक ही तो हुए। यक़ीन करें हमारे आस–पास के सभी लोग भी ऐसे ही हैं। सभी वैज्ञानिक हैं, सभी ज्ञान का सृजन करते हैं, बच्चे भी। उक्त घटाने के उदाहरण को हल करते समय लोग कई तरीक़े अपनाते हैं उनमें से कुछ निम्नानुसार हैं–

1. 188 से 200 तक पहुंचना है, 188 में 100 तो पहले ही है इसलिए अब 88 से 100 तक पहुंचना है। पहले 90 तक पहुंचे तो 2 की दूरी तय की उसके बाद 90 से 100 तक पहुंचने के लिए 10 की दूरी तय की। इसलिए 2 में 10 मिलकर 12 की दूरी तय की अतः उत्तर 12 है।

2. कुछ लोग 200 से 188 तक उतरते हैं दोनों में 100 तो है ही इसलिए केवल 100 से 88 तक उतरना है। पहले 100 से 90 तक उतरे फिर 88 तक अतः 10 अधिक 2 बराबर 12 उत्तर है।

ध्यान रहे स्कूल में इसमें से कोई भी तरीक़ा नहीं बताया गया है। घटाने के प्रश्न को जोड़ने के प्रश्न में बदलना तो हमने स्वयं सीखा। हम ही ने तो किया प्रश्न हल करने के तरीक़े के ज्ञान का सृजन। बच्चों की इस शक्ति का उपयोग यदि स्कूल शुरू से करे तो बच्चे में तार्किक क्षमता, विश्लेषणक्षमता, समस्याओं का हल खोजने की क्षमता, सृजनशीलता इत्यादि बढ़ेगी। ये सभी जीवन कौशल हैं। शिक्षा का असली उद्देश्य भी यही है कि बच्चे अपने चिन्तन और कार्यों में स्वतंत्र हों। शिक्षा का असर उनके व्यक्तित्व पर दिखे। तब भेजेंगे ग़रीब लोग भी अपने बच्चों को स्कूल। तब होगी हमारे समाज से ग़रीबी दूर। इसलिए ज्ञान सृजन पद्धति स्कूलों में आवश्यक है। अतः स्कूली पाठ्यचर्या का यह अभिन्न अंग होना चाहिए। शिक्षक प्रशिक्षण, फिर वह चाहे सेवापूर्व हो या सेवांतर्गत उसमें भी ज्ञान की निर्माणवादी पद्धति लाना अनिवार्य प्रतीत होता है।

# चलो जामुन खाने

★ ज्योतिभाई देसाई

**1950 में बम्बई शासन द्वारा 'सर्वोदय योजना' का प्रारम्भ किया गया था। उसके अनुसार अहमदाबाद जिला शिक्षा समिति ने 14 स्कूलों का संचालन नवलभाईजी को नई तालीम के प्रयोग करने को सौंपा गया था। वहां शिक्षा के कुछ प्रयोग ज्योतिभाई देसाई को भी करने को मिले थे। यहां पेश किया क़िस्सा पुराना अवश्य है पर यह अनुठा अनुभव ज़रूर है।**

''भाईजी तालाब पर जामुन हुए हैं ना, वहां जामुन खाने जाना चाहिए। आज पूरे दिन क्यों न वहां बिताएं।'' बच्चों ने मिलकर आवाज़ उठाई।

मेरे पांचवें दरजे के बच्चों को अब यह भा गया कि रोज़ाना स्कूल में क्या होगा यह बच्चे ख़ुद तय करें, यह रिवाज़ वे समझ चुके थे। अतः यह जामुन खाने के प्रोग्राम का प्रस्ताव बच्चों ने पेश कर दिया।

''यह तो सुंदर विचार है। पहले थोड़ा सोच लें।'' मैंने कहा। ''भाईजी यह क्या कहते हो? जामुन खाने जाने में भी क्या सोचने की बात करते हो आप?'' गोविन्द ने फट से पूछ लिया।

हमारी तनु बहन हमेशा तैयार उत्तर देतीं, 'यह भी तो तय हुआ है कि हम हर बात के लिए सोच लगाएंगे, फिर भी तुम पूछते हो? यह भी तो ना कि हमारी कक्षा में हमारे साथ श्रीधर है। उसका एक ही पैर ठीक है और दूसरे पैर की जगह वह एक लकड़ी का आधार लेकर चलता है। दौड़कर हमें पीछे छोड़ भले देता हो पर महादेव मंदिर के तालाब तक जाने में वह थक भी जावेगा न? उसके बारे में भी सोचना है ना।' 'मान गये, चलो हम श्रीधर को ही अपना आज का लीडर बनाएंगे। उसकी गति से ही चलेंगे। कोई आगे नहीं निकलेगा', सरगाम ने मानों हुकम दिया।

''और अधिक क्या सोचना चाहिये?'' मैंने पूछा 'आप ही बताइये ना' पांच–छह विद्यार्थी बोल पड़े।

''देखो, हम सब साथ मिलकर सोचते हैं तो सबके सुझावों का उपयोग होता है। किसी एक के कहने पर बात पक्की नहीं करते हैं। साथ सोचने में बहुत सारे सुझाव आवेंगे। उन्हें लेकर उसमें से उचित विचार को और सबको जांचनेवाला स्वीकार कर अमल करें तभी अच्छे काम हो पायेंगे। मेरे मन में कोई विचार आवे और आप सब वही करें तो यह मनमानी होगी...'' मैं बोल रहा था। वहीं कशमीरा टपक पड़ी। 'आप गुरुजी हैं ना! तो आप जो कहें वह करना चाहिये ना।'

दो तीन लड़के लड़कियां हंसने लग गए। 'ये लो अभी वही पुरानी तान पकड़े हैं। अब हम 5 वें दरजे के बच्चे हैं। ये नये भाईजी हमें जो करवाते हैं उसकी पहचान ही इन्हें नहीं। कशमीरा तू पगली है।'

''सुनो जी कशमीरा को ऐसे फटकारना और उस पर हंसना ठीक नहीं। उसको समझाना है। बड़ों की बात नहीं माननी है, ऐसा तो है नहीं। हां, इतना समझना ज़रूरी है कि सबको जंचे ऐसा काम जब करते हैं तो काम में अपनापन आता है। सोच लेना तो ज़रूरी है। अब जामुन खाना तो तय हुआ, मैंने ज़ाहिर कर दिया। बचु तब बोल पड़ा, ''अरे चलो जी, सोच–सोचकर क्या करना है। यह सोच की झंझट बेकार...।'' अरे बहादुर बाशींदे। हम भाईजी

★ नई तालीम के जाने–माने शिक्षक रहे हैं।

के विद्यार्थी हैं ना। उन्होंने आज तक कभी डांटा नहीं, न गाली दी है और हम जो सुझाते हैं वैसा ही हमारी कक्षा में हो रहा है। यही बात लो– जामुन खाना तय हो गया। मना थोड़े ही करते हैं? हम जब जामुन खाने स्कूल के परिसर से निकलेंगे तब आचार्य महाशय दिनुभाई तो आग बबूला होनेवाले हैं। बड़ा मज़ा आयेगा यार।'' उस्मान ने कह दिया।

(ऐसी प्रारंभिक चर्चा हमारी 5वीं कक्षा में हुई। दिनुभाईजी की नाराज़गी कम रहे ऐसा बर्ताव करने का भी सोचा गया। स्कूल से निकलने लगे। तब तक 'जामुन खाने' की बात स्कूलभर में फैल गयी थी। यह तो हमेशा की बात होने लगी थी कि आज 5वें दरजेवाले क्या करनेवाले हैं। उस पर पूरे स्कूल के 253 बच्चों का ध्यान रहता था और डूडूडूडू करते। बाक़ी कक्षा के बच्चे भी जामुन खाने की टोली में जुड़ने लगे।)

दो शिक्षिकाएं, दो शिक्षक और दिनुभाईजी अवाक् रह गए! दिनुभाईजी मेरे पास आये ''यह क्या तमाशा किया जा रहा है। आपके ये सारे प्रयोग हमें कहां ले जायेंगे? मुझे बहुत परेशानी हो रही है। आप पहले मेरे साथ बात तो कर लेते।''

मैंने कहा ''श्रीमान्जी, बच्चों ने सुझाया, उनके ध्यान में जामुन पके हैं आना तो सहज था न? तो कौन नहीं लालायित होगा।''

''जामुन खाना है तो स्कूल में आने की ज़रूरत कहां है? गांव को मुझे उत्तर देना पड़ेगा महाराज। स्कूल में पढ़ना है या यही सब अंटशंट बातों में फिजूल समय बरबाद करना है'', दिनुभाई का रुख कड़क हो गया था।

''आप धैर्य रखिये। आज हमारे साथ चालिए। आप भी जामुन खाने का मज़ा लीजिये'' मैंने कहा।

'ऐ मास्टर ऐसे पाठ्यक्रम पूरा होना संभव नहीं। तुम्हारी यह बातें नवलभाईजी (आश्रम के संचालक) का आदेश होने की वजह से निभाता रहा हूं। पर आज तो हद ही हो गयी। पूरे स्कूल के बच्चे स्कूल छोड़कर जा रहे हैं जामुन खाने। तुम शहर से आये हो। यह तुम्हारे बम्बई के बच्चे नहीं हैं। यहां गांवभर में चर्चा होगी। सारे उत्तर देने की ज़िम्मेवारी मेरी होगी और कहीं शिकायत हो गयी तो इंस्पेक्टर जी भी आ धमकेंगे। तुमने कैसी–कैसी कठिनाइयां मेरे पल्ले में डाल दी हैं। कुछ तो सोचो।'

''देखिये, दिनुभाईजी, मैं ऐसा विचार लेकर चल रहा हूं कि हर बच्चा सीखना चाहता है। शिक्षा ली जाती है, कभी दी नहीं जाती''

''ऐ महाशय। भूल जाओ अपनी सारी फिलॉसाफी और शास्त्रों की बात। किसी को सुधारना मुश्किल है। इन्हें समझने में मैंने 20 साल बिताए हैं।'' दिनुभाई पूरे बिगड़ बैठे।

''भाईजी, अभी बहस का समय नहीं है। बच्चे बहुत आगे चले गए हैं। उनके साथ पहुंचा जाय यह आवश्यक है। आपसे विनती करता हूं, हमारे साथ आइये और जामुन खाने का मज़ा लें। आज का खेल देख लीजिये। स्कूल के बारे में भी सोचने के लिए बैठना अवश्य पसंद करूंगा।''

बड़ी मुश्किल से दिनुभाई मान गए और हम सब शिक्षकगण तालाब पर पहुंचे। हमारी कक्षा का सगरमा भले ही 5 वें दरजे का विद्यार्थी हो पर वह नज़दीक के गांव ''भूरखी' की पंचायत के मुखिया का लड़का था। हमेशा की तरह सारी व्यवस्था का ज़िम्मा अपने सिर लिए था। सब जामुन एकत्र हो रहे थे। कोई बच्चा जामुन खा नहीं रहा था।

'यह क्या है? ऐसा क्यों कर रहे हो?' शिक्षिका जया बहन पूछ बैठी। 'हरेक बच्चे को जामुन मिले यह आवश्यक है ना और पहली से तीसरी कक्षा के छोटे बच्चों को सबसे पहले जामुन पहुंचाएंगे। वे ख़ुद पेड़ से थोड़े ही ले सकेंगे। 6 वीं और 7वीं कक्षा के लड़के–लड़कियां पेड़ से लावेंगे। सारे जामुन एकत्र करेंगे। गिने जावेंगे और बांटे जावेंगे।

''काम करो...तीरथ करो... बांट के खावो बंदे।''...

गाते हैं ना? हमारी तनु बहन ने सफ़ाई दी।

देखते देखते शिक्षकगणों के सामने बात खुलती गयी। जिस उत्साह और आनंद से जामुन एकत्र करना, गिनना आदि चल रहा था। उनका नज़रिया बदलता जा रहा था।

चौथे दरजे के बच्चे द्रोण (जामुन रखनेवाले दोने) बनाने लग गए थे। वहीं दोनों शिक्षिका बहनें उन बच्चों के साथ द्रोण बनाने में लग गयीं। उनसे बातें करते–करते वे भी खुलकर हंसते हुए अच्छे से अच्छे द्रोण बना–बनाकर दिखाती रहीं।

5वें दरजे के बच्चे एकत्र हुए जामुनों को अलग–अलग छांटने में लग गए–

1. अच्छे से अच्छे, पूरे पके हुए, खाने योग्य
2. फूटे–फाटे हुए
3. कच्चे
4. सड़े हुए

सब अलग–अलग ढेर बनाए जा रहे थे। छोटे बच्चों को गिनने का काम मिला था। खाने योग्य जामुन कितने हैं? हम सब बच्चे कितने हैं? हरेक को कितने जामुन दे सकेंगे? कितने शेष बचेंगे?

'भाईजी, हमारे दिनुभाईजी और आप सबको भी तो देने हैं ना।' कशमीरा कह रही थी। 'ठीक है बेटी' दिनुभाई बोल पड़े।

अब सड़े हुए जामुनों की जांच हुई। क्यों सड़े? सड़ा हुआ भाग कहां है आदि। ललिता बहन (शिक्षिका) पूछने लगी ''किस पेड़ से सबसे अधिक जामुन मिले हैं? और उससे ही क्यों मिले?'' क्यों किसी पेड़ से बहुत कम मिले? यह भी पूछताछ होने लगी।

''बहनजी यह आख़िर का बड़ा पेड़ है ना थोड़े दूर सटा हुआ पर बहुत अच्छा फैला है। इसे पानी भी और जगह भी ठीक मिली है। उसके जामुन तो अव्वल ही हैं और ढेर भरे हुए हैं'', 7वें दरजे के उस्मान ने कहा।

हर बच्चे को जामुन खाकर बीज रख लेने को सुझाव दिया गया। कहीं फेंकना न था। हर बच्चा बीज घर ले जावेगा और उन्हें बोने की भी बात उभर कर आयी। तब दिनुभाई पूछने लगे, 'जामुन का पेड़ तालाब के किनारे ही होता है या और जगह पर भी?' 6वें दरजे के, बगल के अरणेज गांव से आनेवाले जेसंग ने कहा, 'हमारे यहां कुएं के पास भी तो बहुत अच्छा मोटा जामुन का पेड़ है। मेरी मां तो जब ट्रेन आती है, तब जामुन बेचने भी जाती है। जहां पानी ठीक होगा वहां पर जामुन के पेड़ हो ही जाएंगे।' तब जामुन बांटे गए। पहले द्रोण गुरुजनों को दिये गए। हर बच्चे को केवल 15 जामुन ही खाने को देना संभव हुआ। पर कोई बच्चा बिना जामुन के न रहा। अब तो गाने भी शुरू हुए।

जामुन खाए बांट के

जामुन खाए जांच के

जामुन बोए गांव में

जामुन खाए सबने

नाचे कूदे प्यार से

ख़ूब खेले, नाचना भी हुआ और जामुन खाने का उत्सव भी महादेव के मंदिर के तालाब के परिसर में जम गया। पूरा माहौल उत्साह, सहकार और प्रेम से भर गया। मंदिर के पुजारीजी भी ख़ुश हो गए। बहुत दिनों बाद चहल पहल हुई थी। पुजारीजी ने सबको आशीर्वाद दिया। 'यहां बच्चे आवें तब तो इस स्थान की रौनक बढ़ती है ना।'

दिनुभाई मेरे पास आये। कहने लगे ''शिक्षा आनन्दमय हो'' यह कैसे हो सकता है इसका अव्वल नमूना आज मुझे प्राप्त हुआ है। मैं आभारी हूं। क्या हम शिक्षक, शिक्षिकाएं आपके साथ कभी बैठकर अपनी ''जीवनशाला'' स्कूल को जीवन्त बनाने के बारे में सोचने बैठ सकते हैं।

# अविशिका के बहाने

**अरुणभाई दवे (लोक भारती सणोसरा) से चर्चा पर आधारित**

★ प्रस्तुति : विक्रम सिंह अमरावत

मध्यप्रदेश के होशंगाबाद में एक प्रयोग हुआ होविशिका (होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम)। उसी दृष्टि से हमने गुजरात में एक कार्यक्रम किया जिसका नाम दिया अविशिका (अध्येता केन्द्री विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम)। यह पांच साल का कार्यक्रम था जिसमें केन्द्र सरकार से हमें वित्तीय मदद मिली थी। हमने पूरे गुजरात में यह प्रोग्राम चलाया था। गूजरात विद्यापीठ के आस–पास की 10 स्कूलें थी (विद्यापीठ भी इसमें शामिल था)। और फिर वेड़छी से 20 और लोक भारती से 10 स्कूलें लीं। विक्रम साराभाई कम्यूनिटी साईंस सेन्टर अहमदाबाद नोडल एजेन्सी थी। पांचवीं से सातवीं कक्षाओं में जो विज्ञान सिखाया जाता है उसे प्रवृत्ति और प्रयोग करके सीखना है। जो शिक्षक थे उनकी हमने हर तीन महीने में एक बार ट्रेनिंग रखी। ट्रेनिंग कार्यक्रम में बताया गया कि किस तरह हमें बच्चों को विज्ञान में प्रयोग करके सिखाना है। कक्षा में 5–5 विद्यार्थियों का एक दल बनाते थे। विद्यार्थियों के दल के बीच में एक ट्रे रखी जाती थी, जिसमें सभी प्रयोगों के लिए साधन–सामग्री होती थी। फिर सभी को प्रयोग करना था। हमने क़रीब 300 ऐसे प्रयोग चुने जो करवाए जा सकें। प्रयोग ऐसे थे जो करें तो अभ्यासक्रम पूरा हो जाता है। ज़्यादातर प्रयोग और गतिविधियां कैम्पस से बाहर जाकर करना थी। प्रकृति से ही सीखना है, तो पर्यटन था, परिभ्रमण भी होता था। फिर अनुभव करना है कि सुबह कैसे होती है? शाम कैसे होती है? बारिश कैसे गिरती है? ठण्ड क्यों लगती है? गर्मी क्यों लगती है? पौधा कैसे बाहर निकलता है? उसका अंकुरण कैसे होता है? आदि

विज्ञान की नींव में दो बातें हैं एक–अवलोकन और दूसरा विश्लेषण। प्रकृति का अवलोकन करना कि क्या होता है? उसके पीछे कोई ना कोई कारण है। कारण तलाश करना विज्ञान की प्रवृत्ति है। जो साबित करके सिद्धान्त के रूप में देता है वह उसका शोधक माना जाता है। जब हम विज्ञान और तकनीक की बात करते हैं, वो जीवन में हम कैसे ला सकते हैं? ये जो छोटे बच्चे हैं, अभी से उनका विश्लेषक दिमाग़ बनाना है। बच्चा जो भी चीज़ देखेगा उसका कैसे विश्लेषण कर पाएगा? और अवलोकन सही तरीक़े से करना है। जो भी प्रयोग हैं बच्चे को ख़ुद से ही करना है। कोई और करेगा एवं उसको देखना है, ऐसा नहीं है। प्रयोग के साथ हम उसका परिणाम भी नहीं देते हैं। परिणाम बच्चे को ख़ुद ढूंढ़ना है, सोचना है। ऐसा क्यों है? तो उससे उसकी जिज्ञासा वृत्ति बढ़ेगी, कुतूहलता बढ़ेगी। हम ऐसा बोलते थे कि हमारी ये विज्ञान पढ़ाने की जो प्रणाली है वो सरल, रुचिकर और सस्ती है। इसमें ज़्यादा पैसा नहीं लगता, क्योंकि हमारी रसोई में कुछ है, हमारे आंगन में कुछ है फिर जो गारबेज हैं, उसमें से हम कुछ निकालते थे। जो चीज़ हम उपयोग कर के फेंक देते हैं उसी से हम प्रयोग करते थे। तो बच्चे को ये बताना है कि यदि आपको विज्ञान सीखना है तो बहुत महंगी प्रयोगशाला की ज़रूरत नहीं है। हमारे आस–पास इतनी सारी जो

★ नई तालीम परियोजना के तहत गूजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद में कार्यरत।

साधन–सामग्री है उससे भी हम प्रयोग कर सकते हैं। यदि आगे पढ़ना है और शोध की ज़रूरत है तो उसमें ज़रूर बहुत महंगे उपकरण की ज़रूरत होती है। लेकिन प्राथमिक स्तर पर हमें जो बुनियादी विज्ञान सीखना है, उसमें बहुत बड़ी प्रयोगशाला की आवश्यकता नहीं है।

ज़्यादातर शिक्षक बोलते हैं कि हमारे पास अच्छी प्रयोगशाला नहीं है, सुविधा नहीं है, इसीलिए हम विज्ञान नहीं पढ़ाते। तो हमें यह बताना है कि जो प्राथमिक कक्षाओं की बात है उसमें कोई पैसे की ज़रूरत नहीं है। हमारे आस–पास जो जीवन है, आस–पास की जो चीजें हैं, आस–पास की जो घटनाएं हैं, उसी से हम विज्ञान सीख सकते हैं। यदि बुनियादी बातें उसको आ जाती है और वैज्ञानिक नज़रिया आ जाता है तो आगे बढ़ने में उसको बहुत सहायता मिलती है। फिर हमने ये सिखाया कि रिमोट कंट्रोल हैं ये जटिल उपकरण हैं वो ही विज्ञान नहीं हैं। हमारे जीवन में कपड़े धोने हैं, सफ़ाई करनी है, झाड़ू लगाना है, सब्ज़ी काटनी है, कोई भी छोटा सा काम करना है तो हर एक में वैज्ञानिक दृष्टिकोण की ज़रूरत है। विज्ञान का मतलब ये जटिल सामग्री है, ऐसा भी नहीं। विज्ञान एक संस्कार की बात है। विज्ञान संकायवालों को ही विज्ञान पढ़ना है ऐसा भी नहीं। आप आर्ट्स, कॉमर्स या कोई भी फैकल्टी ले लें, यदि आप अच्छे ढंग से जीना चाहते हैं तो आपके पास वैज्ञानिक दृष्टिकोण होना ज़रूरी है।

उसी हिसाब से हमने काम किया और आगे जाकर हमारा प्रधान सूत्र था, जीवन–केन्द्रित शिक्षा। अंत में हम उसको वहां ले जाते थे कि आपने उसका अपने जीवन में कहां उपयोग किया है। ये जो विज्ञान हमने सीखा उसका उपयोग हम जीवन में कहां करनेवाले हैं, करते हैं या हम कर सकते हैं। इन सभी के बारे में उसका अनुबंध, फिर हम जो विज्ञान सीखते हैं, उसका अनुबंध हमारे दैनिक जीवन के साथ भी होना चाहिए। आपने जो ये प्रयोग किया, जो सीखा उसका उपयोग इस परीक्षा में उत्तर देने के लिए नहीं है। हमें अच्छा जीवन जीने के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण की ज़रूरत है। विज्ञान अपने आपमें एक शक्ति है। विज्ञान ख़ुद तय करेगा कि हमें अच्छा करना है। आप उससे बुरा काम भी करवा सकते हो। परंतु हमें अच्छा काम करना है। विज्ञान के माध्यम से हमें रचनात्मक, सृजनात्मक काम करना है। जो प्रकृति है उससे संवाद करना है। प्रकृति ख़ुद एक विज्ञान है, और प्रकृति के पास बहुत सारे जीवन्त उदाहरण और प्रयोग हैं। बारिश गिरती है, फूल खिलता है, फूल में से फल बनता है, बीज अंकुरित होता है इसमें से उत्पादन होता है, हमारे कपड़े बनते हैं। तो हमारे जीवन में उपयोगी जितनी वस्तुएं हैं वो विज्ञान की ही देन है। यदि विज्ञान का उपयोग हम सही तरीक़े से नहीं करेंगे तो बहुत नुक़सान हो सकता है। विज्ञान का उपयोग हमें मानवीय अधिगम से करना है वरना हमें नुक़सान होगा। प्रयोग करके सीखना है, आस–पास की प्रकृति से सीखना है। एक बात हमने ये जोड़ी कि विज्ञान में बच्चों का मूल्यांकन बहुत अलग तरीक़े से किया जाय। उसने क्या पाया, क्या अपने दिमाग़ में या दिल में विज्ञान के बारे में वो समझा, तो ऐसे प्रश्न निकाल सकते हैं जो पाठ्यक्रम में नहीं होते। यदि वो समझा है तो बच्चा मौलिक बुद्धि से जवाब दे सकता है। परम्परागत प्रश्न नहीं पूछते थे। तो मूल्यांकन भी हमने अच्छे ढंग से किया, अलग तरीक़े से किया।

पांचवीं श्रेणी में एक पाठ का नाम है ''बीज एवं उसका अंकुरण'' (बीज अने तेनु अंकुरण) बीज में से पौधा कैसे निकलता है। इसके बारे में क्या था कि शिक्षक अपनी कक्षा में जाकर बोल देता था कि

आपने बहुत सारे बीज देखे होंगे। बीज को हम जब बोते हैं, तो उसमें से पौधा निकलता है जो नीचे जाता है उसको हम मूल (जड़) कहते हैं, ऊपर जाता है वो तना है। इस प्रकार पाठ समाप्त हो जाता है। लेकिन हम पन्द्रह दिनों तक पाठ चलाते थे। हर एक अपने घर से बाजरी के दाने लेकर आते थे, फिर एक डिब्बे में मिट्टी लेकर उसमें अच्छी तरह से बीज गिनकर बो देते थे। फिर गिनते थे कि कितने दाने इनमें से अंकुरित होते हैं। जितने अंकुरित होंगे उतने प्रतिशत सीधे निकल जाते थे। तो जितना उसमें से अंकुरण होता है उससे गिनती होती थी कि उसकी अंकुरण शक्ति कैसी है। एक बार एक लड़के के साथ क्या हुआ कि उसके कम बीज अंकुरित हुए तो वो घबरा गया और रोने लगा। फिर उसे चुप करवाया और बाद में पूछा कि ऐसा क्यों हुआ? तो वह बोला कि मेरे ये जो बाजरी के दाने हैं उनके पॉईंट बिगड़ गए हैं। इनकी अंकुरण शक्ति कम है। वो पॉईंट बिगड़ जाना ये उसकी शिक्षा थी। ये उसने मौलिक ढंग से बताया, ये उसका अवलोकन एवं विश्लेषण था। उसने प्रयोग करके यह सिद्ध कर दिया कि मेरे घर पर जो बाजरी के दाने हैं उनकी अंकुरण शक्ति बहुत कम हो गई है। फिर उसको अभी निर्णय लेना है कि ये तो अभी प्रयोग हुआ और परिणाम निकला है। तब उसने बहुत सुंदर जवाब दिया। मैंने पूछा कि, ''आप घर पर जाकर अपनी मां और पिताजी से क्या कहेंगे? क्योंकि आपको इसकी चिन्ता है।'' तो शुरू में तो वो घबराया लेकिन बाद में मैंने फिर से उसे पूछा कि इन बाजरी के दानों का आपके घर पर क्या उपयोग होता है? तो उसे तुरन्त एक ख़्याल आया कि मेरी मां इनकी रोटी बनाकर हमें खिलाती है। फिर पूछा कि पिताजी क्या करते हैं? तो पहले तो बोला कि पिताजी रोटी नहीं बनाते। लेकिन जब पूछा कि पिताजी इन दानों का क्या करते हैं? तो उसे याद आया कि पिताजी तो किसान हैं। यह तय हुआ कि पिताजी नई फसल लेने के लिए इनको बोते हैं और मां उनका आटा बनाकर रोटी बनाती है। अब आप अपने पिताजी एवं मां से क्या कहोगे? तो उसने बहुत सुंदर जवाब दिया कि, अब मैं यह कहूंगा कि ''पिताजी ये दाने बोने जैसे नहीं हैं इनकी रोटी बनाकर खा जाओ।'' कारण कि इसका आटा बने और रोटी बने। इसी के लिए यह ठीक है। और अगर इन दानों को बोएंगे तो ज़्यादातर तो फ़ेल हो जाएंगे और वे किसी काम के नहीं रहेंगे। अतः ये जो दानें हैं इनका उपयोग रोटी बनाने के लिए करना है न कि दूसरी बार बोकर फ़सल लेने के लिए बीज की तरह। तो सातवीं कक्षा का एक लड़का एक प्रयोग द्वारा इतना अच्छा अवलोकन करके प्रयोग करता है, सोचता है, यही वैज्ञानिक दृष्टिकोण है।

जीवन के साथ अनुबंध है। ये हमारी विडंबना है कि शिक्षक प्रत्येक पाठ को पढ़ाने के बाद ये कहता है कि परीक्षा में क्या पूछा जाएगा? कैसे पूछा जाएगा? रिक्त स्थान आएगा या लघूत्तरात्मक प्रश्न आएगा? पिछले साल में पूछा जा चुका है तो इस साल पूछा जाएगा या नहीं? दो वर्षों से यह नहीं पूछा गया है? इसलिए इस साल यह अतिमहत्त्वपूर्ण है। तो यह परम्परागत शिक्षण पद्धति है। हमने इस प्रोजेक्ट में यही पढ़ाया कि जीवन में विज्ञान का क्या उपयोग है।

# उदास लड़कों का राज

★ कृष्ण कुमार

जो लोग आज़ादी के समय वयस्क हो चुके थे, वे आज के पन्द्रह से बीस साल के लड़कों का बर्ताव देखकर अफ़सोस प्रकट करते हैं और कहते हैं कि यह कैसा ज़माना आ गया। जो लोग आज़ादी के पहली या दूसरे दशक में वयस्क हुए, यानी पैंतालीस साल के लोग, वे लड़कों को देखकर डर और आशंका से भर उठते हैं। लड़कों से बात करने की इच्छा न तो उनके पास है जो अफ़सोस प्रकट करते हैं और न ही उनके पास जो डरे हुए हैं। सड़क, रेल या बगीचे जैसी किसी सार्वजनिक जगह पर लड़कों का जत्था देखकर प्रौढ़ और वयोवृद्ध लोगों के मन में आता है कि किसी तरह बचकर निकल जाएं और सकुशल घर पहुंचें। विचित्र क़िस्म की आवाज़ों का शोर पैदा करते हुए लड़कों को सामने देखकर लोग अपने मुंह दूसरी तरफ़ कर लेते हैं। यह डर उनके दिलों में कौंधकर बैठ जाता है कि कब दो–चार लड़के उनकी ओर बढ़ जाएं और गाली दें या हमला बोल दें। कॉलेज के विद्यार्थियों को देखकर दिमाग़ के किसी कोने में चाकू तन जाता है, भले ही ऐसे लड़कों की कुल तादाद बहुत ज़्यादा नहीं होगी जो पैण्ट की गहरी जेब में हथियार डालकर चलते हों।

शहरी लड़कों की संस्कृति का नमूना देखने के लिए उत्तर भारत के किसी भी इलाके में सफ़र किया जा सकता है, पर सघन अनुभव पाने के लिए सबसे उपयुक्त क्षेत्र उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के पश्चिमी व उत्तरी इलाके हैं। लड़के पांच–दस की टोलियों में घूमते हैं। टोली के व्यवहार का एक ख़ास लक्षण यह है कि वह एक क्षण में निर्णय लेती है। जैसे, यदि एक बस क़रीब आ रही है तो संभव है कि टोली एकाएक बस को रोकने का फैसला करे और बस के भीतर खड़े होकर या छत पर बैठकर आगे क्या करना है, इस बात का फैसला करे। कभी–कभी टोली के सदस्य अपने बीच से किस एक के पीछे पड़ जाते हैं, और यह भी संभव है कि वे बस के किसी यात्री या दो–तीन यात्रियों के पीछे पड़ जाएं। प्रायः वे किसी स्त्री या पुरुष के बारे में अपशब्द कहेंगे और चेहरे के भावों से लगातार कुछ मिनटों तक यह चुनौती देंगे कि आओ, हमसे लड़ो। वे बस की छत पर हुए तो मुमकिन है कोई सामान उठाकर फेंक दें, और रेल के डिब्बे में हुए तो मुमकिन है कि डिब्बे की पिछली दीवार पर लगा पाइप अलग करके गाड़ी रोक दें और उतर जाएं।

इन लड़कों को गुण्डा नहीं कहा जा सकता और ऐसे लड़के भी कम ही होंगे जिनके पेशेवर गुण्डों से सीधे संबंध हों। लेकिन नौकरीशुदा वयस्क लोग जब लड़कों की बात करते हैं तो ''आवारागर्दी'' और ''गुण्डागर्दी'' जैसे शब्दों के सहारे ही करते हैं। आज से कोई बीस–बाईस वर्ष पहले राजकपूर की एक फिल्म के ज़रिए ''आवारा'' शब्द ने जो थोड़ा–बहुत छायावादी आकर्षण हासिल कर लिया था, वह अब इस शब्द में नहीं रहा। बेरोज़गारी बढ़ने से आवारागर्दी अब एक शौक़ नहीं लाचारी है। पर आवारों के प्रति अब कोई हमदर्दी या चिन्ता नहीं दिखती। नफ़रत और डर दिखता है। ऐसी घटनाएं अब हरेक क़स्बे में हो चुकी हैं

★ एनसीईआरटी के निदेशक हैं। स्कूली शिक्षा के मसलों पर सतत चिंतन एवं लेखन करते हैं।

जिनसे लोगों का लड़कों से डर मज़बूत होता चला जाता है। मज़ाक में चाकू चलाकर मार दिए गए साथी या अंधरे में उड़ा दी गई लड़की की कहानियां लोग सुन चुके हैं और पढ़ते तो ख़ैर लगातार रहते हैं।

ऐसे वयस्क आज मुश्किल से मिलेंगे जो लड़कों के चेहरों पर निगाह टिकाकर उनसे बात करते हों। हाई स्कूल और कॉलेज के अध्यापक ने काफ़ी समय पहले छात्रों के चेहरे देखना बन्द कर दिया था। कुछ अध्यापक ऐसे हैं जो लड़कों का चेहरा देखने की हिम्मत रखते हैं, पर सिर्फ़ तब देखते हैं जब लड़कों को डराना हो। ज़्यादातर अध्यापक हवा, दीवार, छत या फिर सारी कक्षा के एक सामूहिक अमूर्त चेहरे की ओर देखकर भाषण देते या किताब बांचते हैं। हरेक लड़के का अपना एक चेहरा है जिसमें उसकी दो ख़ास आंखें हैं, यह एहसास करानेवाले प्रौढ़ आज के लड़कों को मुश्किल से मिलते हैं।

घर का हाल स्कूल या कॉलेज से बहुत भिन्न नहीं है। संतान के भविष्य और विशेषकर रोज़गार की चिन्ता में खोए शिक्षित माता–पिता बचपन से ही लड़कों को भविष्य से डराकर मेहनत करने और सबसे आगे रहने के लिए ठेलना शुरू कर देते हैं। नौ–दस वर्ष की आयु तक बच्चों और मध्यमवर्गीय माता–पिताओं में यह अनुबन्ध रह जाता है कि बच्चे देर–सबेर बड़ों के सपने पूरे करेंगे। इस अनुबंध को जीवित रखने में स्कूल की– ख़ासतौर से प्राइवेट स्कूल की– संस्कृति बहुत मदद देती है। पढ़ाई, खेल, शौक़, बर्ताव, पोशाक आदि सभी मामलों में निरन्तर प्रतियोगिता करवाते रहकर और माता–पिता को बच्चे की प्रगति से अवगत रखकर प्राइवेट स्कूल (जिनमें आज मध्यवर्गीय बच्चों का एक बड़ा हिस्सा पढ़ रहा है) बचपन भर यह आशा जीवित रखता है कि बच्चा किसी न किसी क्षेत्र में आगे बढ़ रहा है। स्कूल के अंतिम वर्षों में यह आशा बच्चे और उनके मां–बाप दोनों में धुंधलाने लगती है क्योंकि तब तक जिन्हें आगे बढ़ना था वे बढ़ चुके होते हैं। सरकारी स्कूल में यह थोड़ा पहले साफ़ हो जाता है।

पन्द्रह–सोलह वर्ष के लड़के के मन में अपने या समाज के प्रति कोई भ्रम नहीं रह जाता, सिर्फ़ एक ग़ुस्सा रह जाता है कि क्यों उसे अब तक अपनी ज़िन्दगी और आस–पास की सचाई से अपरिचित रखा गया। ग़ुस्सा ही उसके माता–पिता में रह जाता है– इस बात का ग़ुस्सा कि इतना ख़र्च करने पर भी उनका लड़का आगे नहीं बढ़ पाया। ग़ुस्से की अभिव्यक्ति का अधिकार बड़ों को मिला है, और वे इस अधिकार का प्रयोग नाना स्थितियों में– कभी अफ़सोस दिखाकर, तो कभी अपराध–बोध जगाकर कर लेते हैं। लड़के के पास सिर्फ़ यही चारा रहता है कि अपने जैसों के साथ निकलकर सड़क पर या बस में अपनी उपस्थिति का आभास कराए।

इलाहाबाद आती हुई रेल में गंगा के पुल के पहले कोई दस लड़के प्रथम श्रेणी के एक डिब्बे में घुस गए। वे गलियारे में तेज़ आवाज़ें (जो साफ़ दिखाती थीं कि भाषा संस्कार उन्हें नहीं मिला) पैदा करते हुए और दरवाज़ों को धक्का देते हुए घूमने लगे। यात्री अपने सीनों को बांहों में बांधकर बैठ गए। एक बोला, ''पुल भर निकल जाए, फिर कोई बात नहीं।'' एक और बोला, ''इन्टर कॉलेज के पास सब उतर जाएंगे।'' लड़के ज़ोर–ज़ोर से दरवाज़ों पर दस्तक देते रहे, पर किसी ने उनकी चुनौती नहीं स्वीकारी। खीझकर या शायद अपनी योजना के अनुसार पुल पार होने के बाद उन्होंने गाड़ी रोकी और उतर गए। फिर अचानक एक आदमी पर पिल पड़े। पास की गुमटी पर चाय पीता एक पुलिसवाला दौड़ा तो सब भाग गए। डिब्बे में बैठे एक सज्जन बोले, ''इन्हें गोली मार देनी चाहिए।''

# बाज़ारवादी मस्ती

★ के. आर. शर्मा

हमारे यहां आजकल हर कहीं इंजीनियरिंग, एमबीए, एमसीए, डेंटल, फ़ार्मेसी, बीएड वगैरह, वगैरह यानेकि प्रोफ़ेशनल महाविद्यालय मकड़ी के जालों की तरह बनते जा रहे हैं। इन सबके चलते यह एक चिंता का विषय है कि नान–प्रोफ़ेशनल विषयों में वे ही छात्र भर्ती होते हैं जो भारी डोनेशन और फ़ीस अदा नहीं कर सकते या फिर वे जो चाहकर प्रोफ़ेशनल कोर्सेस नहीं करना चाहते। यह बाज़ारवाद का ही नतीजा है कि युवा जगत् देश के एक छोर से दूसरे छोर पर इन प्रोफ़ेशनल कोर्सेस के पीछे भागते दिख रहा है।

इन संस्थानों में 12वीं पास करके लड़के–लड़कियां अपने भविष्य को संजोने–संवारने की लालसा लिए चले जाते हैं। इनमें से अधिकांश मध्यमवर्गीय परिवारों से होते हैं। ये ऐसे परिवारों से होते हैं जहां एक–एक पाई जमा करके कुछ ख़ास मक़सदों के लिए रखी जाती है। एक तो, उनकी संतानों की पढ़ाई ऐसी हो जाए कि वे मार्केट में अपनी जगह बनाने के लिए ख़ासे पैकेज पा सकें। दूसरा, पैसा बचाने की वजह होती है कि यदि आकस्मिक बीमारी धर दबोचे तो दवा–दारू में ख़र्च किया जा सके। कई ऐसे बच्चे होते हैं जो आर्थिक रूप से काफ़ी सक्षम होते हैं। उनके लिए महाविद्यालय की फ़ीस और अन्य किसम के ख़र्चे कोई मायने नहीं रखते। कुल मिलाकर इन कोर्सेस को कराने के लिए चाहे डोनेशन ही क्यों न देना पड़े यह एक प्रकार का इन्वेस्टमेंट माना जाता है। इस पूरे परिदृश्य में अधिकांश युवा ऐसे परिवारों से होते हैं जो प्रोफ़ेशनल कोर्सेस इसलिए नहीं कर पाते क्योंकि उनकी आर्थिक स्थिति गवाह नहीं देती। और वे निकट के कस्बों या शहर के महाविद्यालयों में सामान्य डिग्रीवाले कोर्सेस करते हैं। हालांकि यहां भी बाज़ारवादी मानसिकता ही काम करती है।

युवा जगत् जब घर से दूर महाविद्यालय में आ जाता है तो वह शहर में आकर एक अजीब किसम की मस्ती में मगन हो जाता है। दरअसल यह मस्ती हुनर सीखने की नहीं होती, यह मस्ती मूल्यों को अपनाने की भी नहीं होती। यह मस्ती अर्थकेंद्रित होती है। एक बात यह देखने में आ रही है कि जो युवा अपने घर से पढ़ने को दूर जाते हैं, काफ़ी सारा धन चाहे वह बैंकों से क़र्ज़ के रूप में ही क्यों न लिया हो, उसे ख़र्च करने को तैयार होते हैं। ताकि उनके माता–पिता मार्केट के साथ क़दमताल कर सके। बाज़ारवाद के चलते हर युवा में कुछ चाहतें होती हैं जैसे कि उसके पास एक अदद चमचमाता मोबाइल हो, एक मोटरसायकिल हो और बस इनके चलते वह दोस्तों और गर्ल फ्रेंड्स के साथ मस्ती करे। प्रतीकस्वरूप कही गई ये सब शिक्षा की यात्रा में शामिल होने चाहिए। यदि ये चीज़ें नहीं है तो वह अपने आपको निकृष्ट पाता है। और कई दफ़े इन चीज़ों को पाने के चक्कर में वह अविवेकी क़दम उठाने को मजबूर हो जाता है। दरअसल बाज़ारवाद की इस भीड़ में युवा अपने आपको टिकाना चाहता है। और उसके टिकने के मायने ही यह हो जाते हैं कि वह हर उस चीज़ का उपभोग करे जो बाज़ार में उपलब्ध है।

★ विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र उदयपुर। बुनियादी शिक्षा एवं खोजबीन की संपादकीय प्रक्रिया में संलग्न।

सवाल यह नहीं कि दोष युवाओं को दें या उन पर शक करें। मस्ती भी ज़रूरी है। लेकिन इस पूरी तस्वीर में नैतिकता, विवेक और हुनर जो महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों को छात्रों में विकसित करने चाहिए वे कहीं दफ़न होते दिख रहे हैं। यही वह समय होता है जब छात्रों का शारीरिक और आत्मिक विकास चरम पर होता है। जब उनकी शक्ति हिलोरें ले रही होती है। ऐसे में उनके विचारों को सकारात्मक मोड़ देते हुए उनको सींचने की ज़रूरत होती है न कि उनको विकृत करने की। उच्च संस्थानों में एनएसएस सरीखी योजनाएं सेवा भावना और मूल्यों के विकास में बौनी प्रतीत होती हैं।

ज़्यादातर प्रोफ़ेशनल महाविद्यालयों में जाकर देखें तो वहां परिंदा भी पर नहीं मार सकता। जहां गगनचुंबी चमचम करती बिल्डिंग और गेट पर बंदूकधारी चौकीदार जहां हर आने–जानेवाले का हिसाब–किताब रखकर रोबदार वातावरण तैयार किया जाता है कि जिनका सामाजिक सरोकारों से कोई वास्ता नहीं। ऐसे शिक्षा के संस्थानों से नैतिकता और सादा जीवन उच्च विचार की उम्मीद कैसे की जा सकती है। ये संस्थान बेहतर समाज जहां शांति हो, भाईचारा हो के बजाए तनावग्रस्त, आतंक ढानेवाली

बाज़ारवादी संस्कृति को समझने का मौक़ा भी नहीं देते बल्कि इसको बढ़ावा देते हैं। इन सबके चलते जो सपने इन संस्थानों की ओर से युवा को दिखाए जा रहे हैं वे खोखले और आदर्शरहित हैं। पूंजीवादी व्यवस्था की नाव में सवार ख़ासे पैकेज और अपनी ही ज़मीन से जुदा करने का लॉलीपाप देते हैं।

महाविद्यालयों में प्राध्यापकों और छात्रों के बीच किसी प्रकार का विमर्श बन ही नहीं पाता। मैनेजमेंट और छात्रों के बीच शैक्षिक, सामाजिक और वैश्विक विमर्श का प्रश्न ही नहीं खड़ा होता। यहां कब कौन प्राध्यापक नौकरी छोड़कर चला जाएगा यह तब पता चलता है जब वह आना बंद कर देता है। इन संस्थानों में समाज के प्रति कोई प्रतिबद्धता दिखाई नहीं देती। जब संस्थान में ही प्रतिबद्धता नहीं हो तो छात्रों से कैसे उम्मीद की जा सकती है।

चूंकि प्रसंग युवाओं में आदर्शों का है इसलिए गांधी के विचारों की बात किए बिना बात अधूरी ही रह जाएगी। गांधी ने अहमदाबाद में जिस गूजरात विद्यापीठ की स्थापना की थी वहां युवाओं को कोई डिग्री नहीं दी जाती थी। वहां जो भी युवा आता उसको अपनी पसंद के किसी गांव में जाकर बैठना होता था। वहां की परिस्थितियों को समझना और उनकी समस्याओं पर काम करना होता था। इन सबमें यह महत्त्वपूर्ण था कि उस युवा को ही गांव में चाहे मज़दूरी करके या कोई और काम करके अपने रोज़मर्रा के ख़र्च की व्यवस्था भी करनी होती थी।

एक दिलचस्प बात यह है कि हमारे यहां पर कई लोग ऐसे मिल जाएंगे जिन्होंने जाने–माने विश्वविद्यालयों से बढ़िया डिग्रियां हासिल कीं और वे आम समाज के हक़ों के लिए उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य की सुविधाओं के लिए जूझते हुए देखे जा सकते हैं। मैं अपने आस–पास ही कुछ ऐसे स्त्री–पुरुषों को जानता हूं जिन्होंने युवावस्था में उच्च पदों पर आसीन होने के बजाए कांटों भरा रास्ता चुना। एसी चैंबरों में बैठने के बजाए वे समाज के सरोकारों के लिए संघर्ष कर रहे हैं। कई अर्थशास्त्री, आईआईटियन, भौतिकशास्त्री, मेडिकल आदि आदि की डिग्री लिए समाज की ज्वलंत मसलों पर कार्य कर रहे हैं। सवाल यह नहीं है कि समाज सेवा के लिए इस तरह से हर कोई रास्ता अपनाए। मगर संवेदनशील नागरिक का निर्माण करना ही शिक्षा का मक़सद होना चाहिए।

गांधी ने जिस नई तालीम को आज़ाद भारत के लिए रचा था उसमें सामूहिक जीवन को ज़रूरी माना गया था। छात्रों को छात्रावासों में साथ में रहने के अवसर मिलें। सोच यह थी कि यहां वे अपने काम ख़ुद कर सकेंगे। इस प्रकार वे कुछ मामलों में स्वावलंबी जीवन की ओर अग्रसर हो सकेंगे। आजकल लगभग हर महाविद्यालय में छात्रावास व्यवस्था ज़रूर होती है मगर यहां जिस तरह के कारनामे होते हैं उन पर महाविद्यालय का मैनेजमेंट हाथ पर हाथ धरे बैठा रहता है। सही पूछें तो युवाओं की मानसिकता को पढ़नेवाले और उनके साथ विमर्श करनेवाले लोग ही नहीं है संस्थानों में। वे कौन सी परिस्थितियां हैं जिनके चलते युवा भटक जाते हैं? भटके युवाओं के साथ किस तरह का बर्ताव किया जाए? या कि युवा भटके नहीं इसके क्या इंतज़ाम किए जाएं? इन सवालों पर काफ़ी गंभीरता से सोचना होगा।

# एक नायक की अनकही कहानी

★ एस. गिरिधर

बात फरवरी महीने की है जब कर्नाटक के उत्तर दक्षिण हिस्से में सूर्य अपने पूरे शबाब पर होता है। राष्ट्रीय राजमार्ग से 13 किलोमीटर दूरी पर चित्रदुर्गा से 44 किलोमीटर पहले कुडलगी ताल्लूका बेल्लारी ज़िले में आता है। यहां से एक छोटा सा रास्ता जाता है अलुरू गांव को। अलुरू गांव का ही फलिया है वधारभट्टी।

वधारभट्टी एक छोटा सा गांव या यों कहें कि फलिया है जहां की कुल जनसंख्या 200 है। यहां लगभग सभी लोग आदिवासी हैं। इस फलिया में 6 से 11 साल के लगभग 45 बच्चे हैं जो सभी स्कूल जाते हैं।

वधारभट्टी में एक सरकारी प्राथमिक स्कूल है जो लर्निंग गारंटी कार्यक्रम के तहत चुना गया है। उल्लेखनीय है कि यह कार्यक्रम अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन और कर्नाटक शिक्षा विभाग का संयुक्त उपक्रम है। यहां की कुल 896 स्कूलों को सन् 2003 में चुना गया था। वधारभट्टी स्कूल इन सभी स्कूलों में से ए श्रेणी में चुना गया है। ए श्रेणी में किसी स्कूल के आने का मतलब यह होगा कि –

- सभी 6 से 11 वर्ष की उम्र के बच्चे उस गांव या फलिया के स्कूल में भर्ती हुए हैं।
- कम से कम स्कूल में भर्ती 90 फ़ीसदी बच्चे

★ एडव्होकेसी और रिसर्च, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन, बैंगलोर।

नियमित उपस्थिति दर्शा रहे हैं।

- जो दक्षताएं तय की गई हैं उनको कुल भर्ती बच्चों में से 80 फ़ीसदी बच्चे प्राप्त कर चुके हैं।

वधारभट्टी स्कूल के बच्चों ने इन मापदंडों को बख़ूबी पा लिया है। शत प्रतिशत भर्ती, 95 फ़ीसदी उपस्थिति और 84 फ़ीसदी बच्चों ने गणित और कन्नड़ भाषा में दक्षता हासिल की है। जब मैं वधारभट्टी स्कूल में गया तो स्कूल के प्रधानपाठक ने स्वागत किया। 33 वर्ष के लिंगप्पा जो कि स्नातक हैं और प्रशिक्षित हैं, ऊंचे–पूरे जिनको स्थानीय समुदाय ने बच्चों के एक रोल मॉडल के रूप में चुना है। लिंगप्पा इस स्कूल में सन् 1997 से हैं जब स्कूल प्रारंभ हुआ था। तब इस स्कूल में नाममात्र के कुछ ही बच्चे थे। आज इस स्कूल में 45 बच्चे हैं। पिछले साल तक इस स्कूल में एक ही कमरे में पहली से पांचवीं तक के बच्चों को बिठाते हैं जहां लिंगप्पा और उनके साथी शिक्षक हनुमंथा रेड्डी पढ़ाते हैं। रेड्डी इस टीम के एक ऐसे साथी हैं जो स्वतः ऊर्जा से लबरेज़ और प्रेरित मदद करते हैं। हालांकि यहां इंफ्रास्ट्रक्चर्स की भारी कमी है। पांचों कक्षाओं का एक ही कमरे में लगना, स्कूल कैंपस, पेशाबघर, स्कूल की बाउंड्री का न होना, खेल का मैदान का न होना जैसी परिस्थितियां मौज़ूद हैं। यदि कोई ध्यान नहीं रखे तो फिसलकर सड़क पर जा सकता है।

तो वहां क्या चमत्कार हुआ? लिंगप्पा हंसते हुए कहते हैं – मैं स्कूल में सुबह 8:30 पर आ जाता हूं और देर तक रुकता हूं। मैं यहां पर ही रहता हूं। मैं मानता हूं कि यही मेरा घर है। लेकिन दिलचस्प बात देखिए कि बच्चे मेरे स्कूल आने के पहले ही पहुंच जाते हैं। मुझे अन्य गांवों की ही तरह गांव में बच्चों को स्कूल में बुलाने के लिए घूमना नहीं पड़ता।

अभिभावकों के बारे में बताएं तो यहां पर 80 फ़ीसदी असाक्षर हैं। इनमें से ज़्यादातर खेतीहर मजदूर हैं। जब काम–धंधे नहीं होते हैं तब वे रोज़ाना 10 रुपए ही कमा पाते हैं और काम–धंधे के समय 80 रुपए रोज़ तक कमा पाते हैं। लेकिन यहां सभी अभिभावक अपनी बच्चियों और बच्चों को स्कूल भेजते हैं। यहां तक कि बच्चे जब जल्दी स्कूल जाते हैं और यदि देर से घर पहुंचते हैं तो घरवाले फ़िक्र नहीं करते। ''मेरे लिए समुदाय का सबसे बड़ा सहयोग है,'' लिंगप्पा कहते हैं। इस स्कूल की डेवलपमेंट मॉनिटरिंग कमेटी के अध्यक्ष असाक्षर हैं और मज़दूरी करते हैं। लेकिन वे स्कूल की गतिविधियों में काफ़ी मदद करते हैं। थिम्मा रेड्डी जो कि उस फलिया के एक किसान हैं उनका बच्चा कक्षा दूसरी में है और वे विद्यालय समिति के सक्रिय सदस्य हैं। जब हमने स्कूल बिना किसी सूचना के बंद कर दिया तो वे स्कूल में आ गए।

चलिए, मगर हम कैसे मानेंगे कि बच्चे मूल्यांकन समूह के समक्ष मौखिक और लिखित जांच में बढ़िया कर रहे हैं? इस बारे में हनुमंथा रेड्डी बिना किसी लाग लपेट के कहते हैं कि इस लर्निंग गारंटी कार्यक्रम का शुक्रिया कि इसके तहत हमको दक्षताओं की विस्तृत जानकारी दी गई है ताकि हम पहली से चौथी तक के बच्चों ने जो दक्षताएं हासिल की हैं उनको देख पाते हैं। हम अपने आपको सक्षम पाते हैं कि इन दक्षताओं को हासिल कर सकें। हम दोनों शिक्षक स्कूल की दीवार का उपयोग ब्लैक बोर्ड के रूप में करते हैं जहां कई तरह के प्रश्न लिख दिए जाते हैं ताकि बच्चे उनका अभ्यास कर सकें।

लेकिन ऐसा नहीं लगता कि एक ख़ास समय के लिए यह एक प्रकार की ट्यूशन है? इस सवाल के जवाब में लिंगप्पा उत्तेजित होकर कहते हैं कि यह उनके नेतृत्व और खुद के विश्वास की बात है कि यहां आप इस स्कूल के बच्चों का अचानक ही

मूल्यांकन करते हैं तो वे बढ़िया ही करेंगे। हम हर बच्चे को रोज़ाना ही स्कूल में मौक़ा देते हैं। हम हर बच्चे की ओर ध्यान देते हैं। इस स्कूल के सभी बच्चों का चुनाव नवोदय स्कूल के लिए हो जाना चाहिए जब वे यह स्कूल छोड़ेंगे। ऐसा तभी हो सकता है जब बच्चे इस योग्य हों कि वे अवधारणाओं को ठोस रूप से समझ लेते हैं। हनुमंथा रेड्डी इसमें और जोड़ते हैं कि हम समूह में काफ़ी कार्य करवाते हैं। एक ही कक्ष में हम सभी 45 बच्चों को उनकी कक्षा के हिसाब से सक्रिय रूप से गतिविधियों में जोड़ लेते हैं। यह तभी संभव है कि जब हमारे पास बच्चों के पास करने के लिए इस प्रकार की गतिविधियां हों। इसके बावजूद कई बच्चे काफ़ी धीरे से सीखते हैं। ऐसे बच्चों के लिए हम शाम को 4:30 पर अलग से कक्षा चलाते हैं। लेकिन यह देखा गया है कि इस दौरान भी अन्य बच्चे ठहरते हैं। इसका मतलब यह है कि लिंगप्पा और मैं एक अलग प्रकार के कार्य उन बच्चों को देते हैं जिनको धीमे से सीखनेवाले बच्चे करते हैं।

जब ये दोनों शिक्षक हमसे बात कर रहे थे तब बच्चे कक्ष में थे इनमें से कुछ छोटे बच्चे छत पर थे। और बाक़ी के किताबों में से पढ़कर कुछ चर्चा कर रहे थे। मैं अपने आपको रोक नहीं पाया और मैंने बच्चों से जानना चाहा कि वे दशमलव की अवधारणा समझ पाए हैं या नहीं। ज़्यादातर समय मैंने कक्षा पांचवीं के बच्चों से ही पूछा कि 0.1 को दस बार जोड़ें तो क्या होगा? मैंने जो जवाब पाया वह 10 भी था और 0 भी। यहां श्रीधर जो कि कक्षा पांचवीं में है उसने बेबाक होकर इसका जवाब दिया। रेखा जो कि कक्षा चौथी में पढ़ती है और पवित्रा जो कि कक्षा तीसरी में पढ़ती है उछलकर चार संख्याओं के जोड़ और हासिल के सवालों को सरलता से हल कर पाती है। वे बिना किसी रुकावट के बख़ूबी उन अवधारणाओं को आत्मसात् कर चुकी हैं। उनसे जब पूछा कि वे बड़ी होकर क्या बनना चाहते हैं? इस पर श्रीधर लिंगप्पा की ओर इशारा करते हुए कहता है कि वह शिक्षक बनना चाहता है। उन दोनों बच्चियों ने कहा कि वे डॉक्टर बनना चाहती है।

यहां बच्चे काफ़ी आज़ादी महसूस करते हैं। किसी तरह की कोई अनुशासन की जकड़न नहीं है। लिंगप्पा के चेहरे पर संतोष उभरा दिखाई देता है। वे हमेशा हंसते रहते हैं। वे बच्चों के साथ सहजता के साथ पेश आते हैं।

इस गांव में स्कूल का नया भवन बन चुका है। इसमें दो कमरे और एक बरामदा है। एक पेशाबघर भी बन चुका है। लिंगप्पा लर्निंग गारंटी कार्यक्रम के तहत प्राप्त राशि का उपयोग स्कूल में ग्रिल बनाने में करना चाहते हैं ताकि बच्चे नाली में गिरने से बच सकें। वे स्कूल में एक पुस्तकालय भी बनाना चाहते हैं। मैं निश्चित तौर पर कह सकता हूं कि यह स्कूल अगले साल भी पुरस्कृत हो सकेगा।

जब हम वधारभट्टी से रवाना हो रहे थे कि लिंगप्पा ने शरारती हंसी को अपने चेहरे पर बिखेरते हुए कहा कि आपको पास के अलुरू माध्यमिक विद्यालय में भी जाना चाहिए और वहां पर वधारभट्टी के बच्चों से बात करनी चाहिए। अलुरू के माध्यमिक विद्यालय में इस स्कूल से निकले बच्चे पढ़ते हैं।

तो यह एक स्कूल है जो छोटे से फलिए में लगता है जहां खेतीहर मज़दूर हैं आर्थिक संपन्नता से विमुख, ज़्यादातर अभिभावक असाक्षर, स्कूल की बात करें तो एक कमरे में पांच कक्षाओं का संचालन मगर उच्च गुणवत्तावाली शिक्षा जहां हमारे पास ठोस प्रमाण हैं। यहां इस कार्य को एक मुहिम का दर्जा दिया गया है। जहां शिक्षकों की गहरी दिलचस्पी है और उनके सरोकार गहरे हैं शिक्षा के प्रति ताकि बच्चे बेहतर शिक्षा हासिल कर सके।

# शिक्षा कैसी हो?

★ अनंत गंगोला

ये लेख कुछ बताने का प्रयास नहीं है वरन् कोशिश है यह जानने की कि शिक्षा से मेरी अपेक्षाएं क्या हैं? मैं जब भी मानव की उसके उद्‌भव से अब तक की यात्रा के बारे में सोचता हूं तो मुझे उसकी दो वृत्तियां सार्वकालिक प्रतीत होती हैं। एक उसकी जन्मजात जिज्ञासा और दूसरी लगातार कुछ नया रचने, सृजन करने की अथक और अनवरत चलने वाली इच्छाशक्ति। उसकी जिज्ञासा को मैं सृष्टि में स्वयं को, समय में स्वयं को, राष्ट्र और समाज में स्वयं को, संस्कृति और भाषा में स्वयं का स्थान जान पाने का प्रयास मानता हूं। यह स्वयं को जानने की कोशिश ''स्वयं और 'अन्य''' में रिश्ते तलाशने की कोशिश है। यही वजह मुझे उसके इतिहास में जाने का कारण प्रतीत होती है। यही वजह मुझे उसकी विभिन्न माध्यमों से कुछ जानने का उपक्रम लगती है। कुछ नया रचने की वृत्ति उसे बिना थके, बिना रुके कुछ न कुछ रचने और रचते चले जाने की स्फूर्ति और इच्छाशक्ति प्रदान करती है। चूंकि इन दो वृत्तियों को मैं मानव जीवन में एक नैसर्गिक प्रक्रिया के तौर पर देखता हूं। अतः शिक्षा मुझे मनुष्य की खोज और अन्वेषण को पैनापन देने और दिशा प्रदान करने का सबसे बेहतर साधन प्रतीत होती है।

शिक्षा से मेरी दूसरी बड़ी अपेक्षा है कि वह मनुष्य की जिज्ञासा की प्रवृत्ति को विस्तार दे। शिक्षा कुछ प्रश्नों के उत्तर देने के साथ–साथ शिक्षार्थी को प्रश्न करने और प्रश्नों के समाधान खोजने को बाध्य करे। यानी उसे सतत अन्वेषण के मार्ग पर अग्रेसित करे।

ये अन्वेषण सभी नियमों, मान्यताओं को परखने तथा नए नियमों और मान्यताओं को विकसित करने में उसके सहायक हों, न कि बिना परखे नियमों और मान्यताओं को कर्मकाण्डों की तरह निभाने की प्रेरणा दे। अन्वेषण उसे जीवन में सौन्दर्य एवं सार्थकता तलाशने के उपक्रम में लिप्त करे और सृष्टि में संतुलन की महत्ता का दर्शन कराए।

यह प्रश्न उठता है (प्रश्न तो उठाना ही होगा) कि आख़िर इस तरह की शिक्षा को प्राप्त करने का तरीक़ा क्या होगा? इस बात को सोचता हूं तो तरीक़ा कुछ इस तरह के पाठ्यक्रम और पाठ्यचर्चा की रचना करते प्रतीत होता हैः– जैसा कि मैंने पहले लिखा है कि मनुष्य में स्वयं को जानने और 'स्वयं' और 'अन्य' में सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा प्राकृतिक रूप से उपलब्ध होती है। अतः शिक्षा इस मनोवृत्ति का भरपूर उपयोग कर सके, ऐसा पाठ्यक्रम आरम्भिक रूप से यानी प्रारम्भिक शिक्षा में होना चाहिए।

बच्चे के सीखने की प्रक्रिया, उसे स्थानीय परिवेश से परिचित कराने से प्रारम्भ हो और उसे सृष्टि तक ले जाए। यानी लोकल से ग्लोबल तक जाने और फिर ग्लोबल का लोकल से सम्बन्ध स्थापित करने में उसकी मदद करती हो और यह सब हो, इस प्रकार कि बच्चों को ज्ञान परोसा न जाए। वरन् बच्चों को दिशा और दृष्टि प्रदान की जाए ताकि वे

★ अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन, उत्तराखंड के राज्य प्रमुख हैं।

ज्ञान का सृजन कर सकें। विषय और विषयवस्तु को पाठ्यक्रम पूरा करने की आपाधापी के चलते रेडिमेड सोल्यूशंस के रूप में सूत्रों और समाधानों के तैयार माल की तरह उपलब्ध न कराया जाए, वरन् स्थितियां और परिस्थितियां उपलब्ध कराकर सूत्र और समाधानों तक अन्वेषण के रास्ते से बच्चों को खुद पहुंच पाने के लिए प्रेरित किया जाए। यह तरीक़ा बच्चों को अत्यधिक ख़ुशी प्रदान करनेवाला होता है और जिज्ञासा की उनकी जन्मजात वृत्ति को जीवित भी रखता है और उसे विस्तार भी देता है। यानी कि शिक्षा सृष्टि में नियम, अवधारणाओं और मान्यताओं के रूप में उपलब्ध ज्ञान को खोज करने का माध्यम बने।

मुझे कल्पना चावला के उदाहरण से अपनी लोकल से ग्लोबल की यात्रा का रिश्ता सीधे–सीधे जुड़ता हुआ प्रतीत होता है। कल्पना चावला अपने जीवन के आरम्भिक दिनों में हरियाणा प्रान्त के एक शहर में रहती थी। तब उसे उस शहर की एक लड़की के रूप में अपनी पहचान प्रतीत होती थी। फिर जब वह दिल्ली में पढ़ने गई तो उसने स्वयं को हरियाणा की एक लड़की के रूप में जाना। उसके बाद जब वह 'नासा' में काम करने लगी तो वहां वह अपने आपको भारत की एक लड़की के रूप में जानती रही। और जब वह अन्तरिक्ष में थी तब उसे अपनी पहचान पृथ्वी से आई हुई एक लड़की के तौर पर लगी।

यहां इस उदाहरण को रखना मैं इसलिए चाह रहा हूं कि शिक्षा के माध्यम से ज्ञान की उड़ान हमें कल्पना चावला की तरह की पहचान यानी पृथ्वी गृह में जन्मे एक मानव के रूप में जान पाने की बौद्धिकता उपलब्ध करा सके। यानी शिक्षा पहले अपनी परिधि की पहचान स्थापित करने में मदद करे और फिर उसे लांघकर विस्तृत परिधि में ले जाए। फिर वह उस परिधि को जानने समझने में सहायक हो। और फिर उसे जानने के बाद उसे लांघने दे और यह क्रम चलता रहे।

# कैसे पढ़ाएं गणित?
# शिक्षक ने लिखा अपने शिक्षक मित्र को खत

सुधीर श्रीवास्तव

प्रिय निलेश,

तुम्हारी चिठ्ठी मिली। कल से लेकर अभी तक उसे कई बार पढ़ चुका हूं। तुम्हारी बातों से बड़ी खीज और निराशा झलक रही है। विशेष रूप से वहां, जहां तुम लिखते हो ''... या तो ये बच्चे गणित नहीं सीख सकते या मुझे ही पढ़ना नहीं आता...।'' मुझे चिन्ता भी हुई और ख़ुशी भी। चिन्ता इस बात की कि तुम्हारे जैसा परिश्रमी व्यक्ति भी ऐसा कह सकता है। ख़ुशी इस चीज़ पर कि तुम बच्चों के नहीं सीखने से परेशान होते हो। काश! सभी शिक्षक तुम्हारी तरह, बच्चों की फ़िक्र करनेवाले होते।

तुम्हारी यही बात मुझे बाध्य कर रही है कि तुमसे इस पर बातें करूं। पहले तुमसे बच्चों की कठिनाइयों पर बात करूंगा, फिर शिक्षक के रूप में तुम्हारी मुश्किलों पर। मैं नहीं जानता, मैं जैसा सोचता हूं या करता हूं उससे तुम्हें मदद मिलेगी या नहीं। क्योंकि हर बच्चे की अपनी समस्या होती है और कोई एक तरह का हल दूसरी जगह भी कारगर हो ऐसा ज़रूरी नहीं। फिर भी मुझे लगता है, कुछ बातें ऐसी ज़रूर हैं जो सीखने की बेहतर परिस्थितियां बनाती हैं।

एक बच्ची गणित सीखते समय कैसी दिक़्क़तें महसूस करती है, कैसे उसे हल करती है? इस पर सोचते हुए मुझे कुछ याद आ रहा है। उसे वैसा ही लिखने की कोशिश करता हूं ताकि तुम अपने ढंग से उसका विश्लेषण कर सको।

एक शाम जब ऑफ़िस से घर लौटा तो देखा मेरी छोटी बेटी सत्या अपनी मां से उलझ रही थी। ग़ुस्से से लगभग चीख रही थी – ''मैं नहीं पढ़ना चाहती गणित...। सबसे गन्दा विषय। कौन लाया इसको दुनिया में? मिलेगा तो बहुत मारूंगी, बोलूंगी चल मेरी क्लास में बैठ के देख।'' उसकी मां ने मेरी ओर देखा। उनकी आंखों में एक सवाल था – ''क्या करूं?'' मैंने इशारे से ही कहा ''छोड़ दो।''

थोडी देर बाद मैं सत्या के पास जाकर बैठा। उसकी पीठ पर हाथ रखकर पूछा – ''क्या बात है बेटा?''

उसने मेरी ओर देखकर कहा – ''पापा, गणित अच्छा विषय नहीं है न?'' मुझे जवाब नहीं सूझा। थोड़ा ठहरकर मैंने कहा – ''हां बेटा कभी–कभी मुझे भी ऐसा ही लगता है।'' वह आश्वस्त हुई उसके विचार को स्वीकृति मिल गई थी। मैंने पूछा–

''आज मम्मी से क्यों झगड़ रही थीं?''

''मम्मी होमवर्क पूरा करने को कह रही थीं।''

''होमवर्क मुश्किल था क्या?''

''मुश्किल नहीं था, मेरे से बन जाता है पर आज स्कूल में डांट पड़ी इसलिए ग़ुस्सा आ रहा था।''

''अच्छा तो ये बात है। क्या हुआ था स्कूल में?''

★ एससीईआरटी, शंकर नगर, रायपुर, छत्तीसगढ़। संस्थान द्वारा प्रकाशित शैक्षिक संकल्प के संपादक।

''पापा, आज दो तरह के सवाल मिले थे। एक, मीटर को सेंटीमीटर में और दूसरा, सेंटीमीटर को मीटर में बदलो। टीचर बोली कि मीटर को सेंटीमीटर में बदलने के लिए सौ का भाग दो।''

''तुम तो गुणा और भाग करना जानती हो इसमें क्या प्राब्लम है?''

''प्राब्लम है पापा। मैं कई बार भूल जाती हूं, कहां गुणा करना है और कहां भाग देना? आख़िरी सवाल में तो किलोमीटर भी आ गया है।''

''ओह! . . .तुमने अपनी प्राब्लम टीचर को बताई?''

''हां पापा, मैं उनसे पूछा कि मीटर को सेंटीमीटर में बदलते समय सौ का गुणा क्यों करते हैं?''

''वाह! तुम्हारा सवाल तो बढ़िया था। क्या जवाब दिया टीचर ने?''

''टीचर ज़ोर से बोलीं – ''जितना मैं कह रही हूं उतना करो।''

ओह!...

मुझे कुछ सूझा नहीं क्या बोलूं। फिर मुझे लगा, इस समय टीचर की इस प्रतिक्रिया पर सोचने से अच्छा है बच्ची के सवाल पर विचार किया जाए।

जब मैंने इस सवाल पर ग़ौर किया तो मुझे लगा कि और भी कई सवाल होंगे जिन पर सोचना होगा जैसे बच्चे की वास्तविक समस्या क्या है? क्या वह मीटर, सेंटीमीटर के आपसी सम्बन्ध को समझता है? क्या उसे पता है कि इन इकाइयों की मदद से किस चीज़ के नाप को किया जाता है? क्या मीटर और सेंटीमीटर के परिणाम में भेद कर सकतें है? क्योंकि मुझे तो अभी भी कठिनाई होती है जब मैं किसी बिल्डिंग की ऊंचाई या ज़मीन की लम्बाई–चौड़ाई का अनुमान लगाता हूं या फिर मीटर या फुट में दिये गये परिणाम को आपस में बदलता हूं। ये तो वे समस्याएं हैं जिनकी मैं कल्पना कर पा रहा हूं। न जाने ऐसी और कितनी बातें होंगी जो मेरी सोच से परे हैं।

यह सब सोचते हुए मैंने तय किया कि पहले यह पता किया जाए कि बच्ची नाप–जोख के सम्बन्ध में मोटे तौर पर क्या–क्या जानती है। फिर उसे मीटर स्केल या टेप दिखाकर मीटर–सेंटीमीटर के बारे में बात की जाए। इतनी बातचीत से तो समझ बनेगी और उसके आधार पर आगे सोचा जाएगा।

खाना खाते समय मैंने पूछा–सत्या मेरे लिए रोटी लाओगी?

''हां पापा।''

''दो किलो ले आओ बेटा।'' मैंने सहज बनते हुए कहा।

''दो किलो''? उसने मेरी ओर आश्चर्य से देखा फिर कहा –

''पापा किलो में तो सब्ज़ी, दाल, शक्कर लाते हैं।''

''अच्छा ऐसा है, तो चलो दो लीटर ले आओ, आज इतना ही खा लूं।''

''क्या मज़ाक़ है पापा, रोटी पेट्रोल है क्या जो लीटर में नापेंगे?''

''अच्छा तो जितनी तुम्हारी मर्ज़ी उतना ही ले आओ।

''बड़ी जल्दी हार मान गए पापा। मैं तो समझी थी कि अभी आप मीटर और घंटे में भी रोटी मंगाएंगे।''

मुझे हंसी आ गई। मैंने कहा ''बेटा, मैं जानना चाहता था नापने की कौन–कौन सी इकाइयों को

तुम जानती हो।''

ये तो मैं समझ गई थी आपके सवाल पूछने के ढंग से। पापा मैं जानती हूं कि मीटर और सेंटीमीटर से लम्बाई नापते हैं। मैं तो इतना जानना चाहती थी कि यहां गुणा–भाग करने के लिए सौ ही क्यों लेते हैं?

खाना खाकर जब उठा तो बात फिर शुरू हुई। मीटर टेप लेकर हम दोनों ने 'एक मीटर' लम्बाई पर ग़ौर किया। फिर यह देखा कि कमरे की कौन–कौन सी चीज़ें एक मीटर से ज़्यादा लम्बी या छोटी हैं। अपने अनुमान को जांचा भी, अनुमान के सही होने का मज़ा भी लिया। एक और गतिविधि की, दीवार और फ़र्श पर छोटे–छोटे निशान बनाए, फिर अनुमान से दूसरे निशान इस तरह बनाए कि वे पहले से एक मीटर दूरी पर हों। इसे जांचते समय बड़ा रोमांच हुआ। हम एक मीटर के बहुत नज़दीक अनुमान लगा रहे थे।

फ़र्श पर एक मीटर लम्बाई का अनुमान लगाते समय यह पता चला कि फ़र्श पर लगे हुए चार टाइलों की लम्बाई ठीक एक मीटर थी। एक टाइल की लम्बाई कैसे बताई जाए इस पर बात करते हुए सेंटीमीटर की नाप को पहचाना। हमने यह देखा कि सत्या की तर्जनी का अगला हिस्सा मीटर टेप पर बने किसी भी सेंटीमीटर के हिस्से को ठीक–ठीक ढंक लेता है।

अब यह पता चल गया था कि एक मीटर कहने से चार टाइलों की लम्बाई के बराबर लम्बाई का अनुमान होता है, जबकि एक सेंटीमीटर कहने से ऊंगली की एक पोर के फैलान का पता चलता है। अब हमने फ़र्श पर लगी टाईल को ऊंगलियों से नापना शुरू किया। यह नाप एक जैसी नहीं आ रही थी। हमने तय किया कि इसे टेप से नापा जाए। नापने पर पता चला की एक टाइल का एक किनारा पचीस सेंटीमीटर का है। दूसरी तीसरी और चौथी सभी टाइल के किनारे एक बराबर निकले।

मैंने बच्ची से पूछा दो टाईल्स की लम्बाई कितनी होगी? उसने कहा – पचीस और पचीस याने पचास सेंटीमीटर...। फिर उसने कहा – ''पापा मुझे बताने दीजिए... चार टाईल्स की लम्बाई माने चार बार पचीस... याने सौ सेंटीमीटर और चार टाईल्स की लम्बाई एक मीटर भी है।''

बिलकुल सही, चार टाईल्स की लम्बाई को हम दो तरह से बता सकते हैं – ''चार टाईल्स की लम्बाई एक मीटर है या चार टाइल्स की लम्बाई सौ सेंटीमीटर है।''

''अब समझ गई पापा, जितने मीटर उतने सौ सेंटीमीटर। पांच मीटर याने पांच बार सौ सेंटीमीटर याने पांच सौ सेंटीमीटर। थैंक यू पापा।''

''मैंने उसके गालों को थपथपाकर पूछा कैसा लगा?''

''मज़ा आ गया।''

रात के साढ़े ग्यारह बज गए थे। मैंने पूछा – अब बस करें?

बच्ची ने कहा – ''एक बात और बता दीजिए। सेंटीमीटरवाले भाग के अन्दर जो छोटे–छोटे निशान है वो क्यों हैं?''

''बेटा अब कल बात करेंगे...।''

''नहीं, अभी बताइए... उसका भी कोई नाम है क्या?''

''बस दो बातें बताऊंगा वे मिलीमीटर के निशान हैं और जो चीज़ें एक सेंटीमीटर से भी कम लम्बाई, चौड़ाई या मोटाई की हों उन्हें नापने में इसकी मदद

लेते हैं। जैसे तुमसे कोई पूछे कि पेंसिल या झाड़ू की सींक कितनी मोटी है तो तुम इसे मिलीमीटर में बता सकती हो।''

मैंने देखा उसका ध्यान कहीं ओर था। मेरी पूरी बात शायद उसने नहीं सुनी। मैंने पूछा – ''क्या सोचने लगी?''

उसने कहा – ''पापा यदि चींटियों के गांव में सड़क बनानी पड़ेगी तो वो सड़क कम से कम तीन मिलीमीटर चौड़ी रखनी पड़ेगी। एक मिलीमीटर जानेवाली चींटियों के लिए एक मिलीमीटर आनेवाली चींटियों के लिए और एक मिलीमीटर की ख़ाली जगह जिससे वो टकराएं नहीं...।''

उसकी इस कल्पना पर मैं चुप हो गया। मैं वहां तक नहीं पहुंच सकता था। उस रात मैं यही सोचता रहा कि कैसे दिमाग़ में नए विचार, नई युक्तियां आती हैं। जब हम किसी काम में डूब जाते हैं तब शायद ऐसे मौक़े बनते हैं। एक बात और जो मुझे आनंदित कर रही थी वह यह कि बच्चे भी नया सोचने में बड़ों से पीछे नहीं हैं।

दूसरे दिन शाम को जब हम सब साथ बैठे थे तभी वहां सत्या आई उसके एक हाथ में कैंची और दूसरे हाथ में इलास्टिक की दो डोरियां थीं एक बड़ी, एक छोटी उसे देखते ही उसके मां ने पूछा – ''अरे! इसे क्यों काट डाली?''

सत्या ने बड़ी शांति से कहा – ''इस टुकड़े को दुकानवाली आन्टी को वापस करना है। आप एक मीटर लाने को बोली थीं। आन्टी ने चार सेंटीमीटर ज़्यादा दे दिया है।''

नीलेश बातें ख़त्म नहीं हो रही हैं, गोया चिठ्ठी न हुई किताब हो गई। कई बैठकें हो गईं, बातें पूरी नहीं हुईं। टुकड़े–टुकड़े में लिखी ये चिठ्ठी टुकड़ों में ही पढ़ लेना, लेकिन पढ़ ज़रूर लेना। इतनी बातों में कोई एक तुम्हारे काम आ जाए तो मुझे तसल्ली हो जाएगी। मुझे तुम्हारी कोशिशों पर यक़ीन है। यक़ीन है कि तुम्हारे बच्चे तुम्हें प्यार करने लगेंगे। इस यक़ीन को सच में बदलने के लिए थोड़ी सी बातें और...।

अब तक जो लिखा वह बच्चों से जुड़ा हुआ था। जब हम बच्चों की क्षमताओं और कमज़ोरियों को पहचानने लगते हैं, जब उन्हें अच्छी लगने और न लगनेवाली अनुभूतियों को ख़ुद भी महसूस करने लगते हैं तो मुझे लगता है एक अच्छा शिक्षक होने के दिशा में आगे बढ़ रहे होते हैं। लेकिन इतना ही पर्याप्त नहीं होता इसके बाद ज़रूरत होती है, अपनी जानकारी और पढ़ाने के तौर–तरीक़ों को बेहतर बनाने की।

अपने ज्ञान को बढ़ाते रहने और जो कुछ हम जानते हैं उसे ताज़ा करते रहने की हमारी आदत बहुत बढ़िया स्तर की नहीं है। पिछले सप्ताह एक शिक्षक साथी से भेंट हुई। चार माह हुए, वे प्राथमिकशाला से उच्च प्राथमिकशाला में पदांकित हुए हैं। यहां गणित पढ़ाने के नाम से वे बहुत परेशान दिखे। उनका कहना था ''मैं किससे सीखूं?'' जब मैंने उनको पूछा कि आपने गणित की पुस्तकों को पढ़ा क्या? तो उनका जवाब ''नहीं '' था। मैंने उनसे फिर पूछा प्राथमिकशाला में गणित पढ़ाने के लिए गणित की किताब पढ़ते थे? तो उन्होंने कहा ''कभी इसकी ज़रूरत ही नहीं पड़ी।'' इसके पहले भी बहुत से लोगों में ऐसी सोच देखने को मिली।

मुझे लगा किसी स्तर पर हम सोचते हैं कि हमें बहुत आता है। उसमें कुछ जोड़ने के लिए सन्दर्भ ढूंढ़ने, कुछ पढ़ने या कुछ करने की आवश्यकता

नही है। वहीं दूसरी तरफ़ थोड़ी सी परिस्थितियां बदल जाने पर हमारे हाथ–पांव फूल जाते हैं और तुरंत हम यह सोच लेते हैं कि हमसे तो कुछ हो ही नहीं सकता। दोनों ओर चरम पर रहते हैं। बीच में रहने की आदत ही नहीं बनी। किताबों के संसार को कभी देखा ही नहीं और इसीलिए उसकी ताक़त का भी अंदाज़ा भी नहीं लगाया। नीलेश, मैं समझता हूं किताबें हमारी बहुत अच्छी दोस्त हैं और बढ़िया टीचर भी। प्रशिक्षणों, कार्यशालाओं और बैठकों में भी बहुत कुछ सीखने–जानने को मिलता है किन्तु हम अपनी छोटी–छोटी समस्याओं के लिए उसका इन्तज़ार नहीं कर सकते। यदि मेरी बात ठीक लगे तो गणित की किताबों को एक बार पूरा पढ़ लो धीरे–धीरे। यक़ीन मानो इतनी सारी नई बातें मिलेंगी कि तुम्हें आश्चर्य होगा।

और हां, यह विश्वास रखना कि तुम एक अच्छे शिक्षक हो। छोटी–छोटी असफलताएं तुम्हारा रास्ता नहीं रोक सकतीं, इतना संकेत ज़रूर करती हैं कि रास्ता बदलने की ज़रूरत हैं। तो कुछ–कुछ नया करो अच्छा लगेगा।

चिठ्ठी लिखना। तुम्हारी चिठ्ठियां मुझे अच्छी लगती हैं।

तुम्हारा ही

**सुधीर**

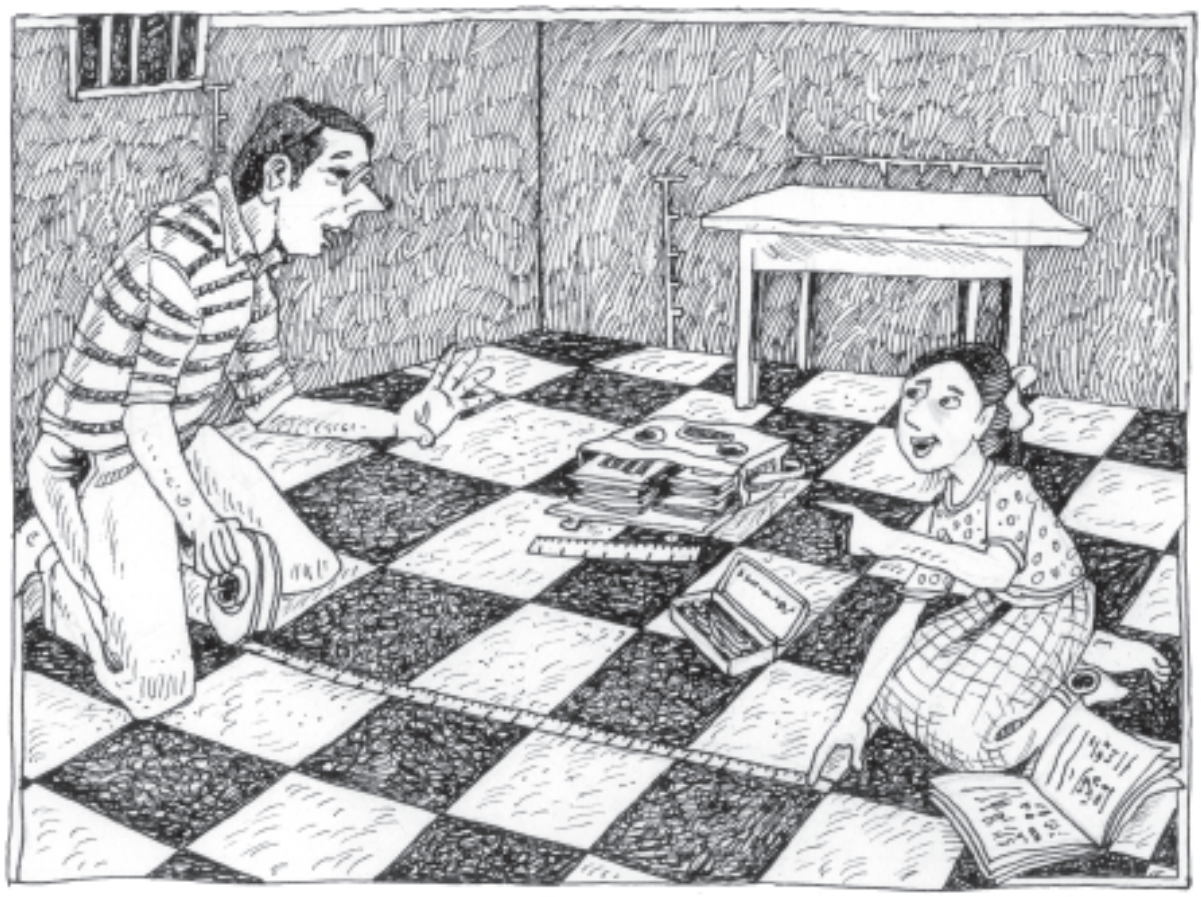

रपट–1

# उच्च शिक्षण के लिए नई तालीम आधारित अभ्यासक्रम की रचना

नई तालीम के सिद्धान्तों के आधार पर उच्च शिक्षा के अभ्यासक्रम की रूपरेखा तैयार करने के उद्देश्य से दिनांक 08 जनवरी 2009 को गूजरात विद्यापीठ में एक दिवसीय कार्यशाला का आयोजन स्व.श्री बाबुभाई शाह की स्मृति में किया गया। इस आयोजन में नई तालीम संघ एवं गूजरात विद्यापीठ में संचालित नई तालीम प्रोजेक्ट की संयुक्त भागीदारी रही।

इस कार्यशाला में गुजरात की नई तालीम संस्थाओं से संबंध रखनेवाले करीब 55 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। कार्यक्रम का संचालन नई तालीम प्रोजेक्ट के संयोजक भरतभाई जोशी द्वारा किया गया। उन्होंने कार्यशाला के विषय क्षेत्र से प्रतिभागियों को अवगत कराया।

कार्यक्रम की भूमिका और अध्यक्षीय उद्बोधन गूजरात विद्यापीठ के कुलनायक सुदर्शन आयंगार द्वारा प्रस्तुत किया गया। उन्होंने स्व. श्री बाबुभाई शाह द्वारा नई तालीम के विकास के लिए किए गए प्रयासों की सराहना की। उन्होंने आज के संदर्भ में नई तालीम की प्रासंगिकता, विकास एवं उपेक्षा जैसे परिस्थितियों से अवगत कराया साथ ही नई तालीम को एक नई दिशा और नई शक्ति देने की आवश्यकता बताई तथा उसे एक राष्ट्रीय आवाज़ बनाने पर ज़ोर दिया। उन्होंने कहा कि नई तालीम आधारित उच्च शिक्षा का अभ्यासक्रम इतना समर्थ हो कि उसमें प्रशिक्षित विद्यार्थी समाज पर बोझ न बने। उन्होंने अभ्यासक्रम की रचना में स्वभाषा, चारित्र निर्माण एवं हुनर आधारित शिक्षा दिए जाने पर बल दिया।

महेन्द्र भट्ट ने स्वलिखित 'नई तालीमना अभ्यासक्रम अंगे नोंध' पर अपने विचार प्रस्तुत किए। उन्होंने अभ्यासक्रम के तीन महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं योग, सहयोग एवं उद्योग पर प्रकाश डालते हुए इनसे संबंधित विषयों की विस्तृत चर्चा की।

मालजीभाई देसाई ने 21वीं सदी के अनुरूप नई तालीम के मूलतत्त्वों को अक्षुण्ण रखते हुए परिवर्तन करने पर ज़ोर दिया। उन्होंने सर्वग्राही मूल्यांकन की विभावना पर बल लिया।

गोविंदभाई रावल ने औपचारिक शिक्षा व्यवस्था के साथ ही अनौपचारिक शिक्षा में अभ्यासक्रम की सार्थकता पर बल दिया। उन्होंने अंग्रेज़ी भाषा को अभ्यासक्रम में शामिल किए जाने की मांग की। गूजरात विद्यापीठ के कुलसचिव राजेन्द्र खीमाणी ने जीवन के साथ अनुबन्धित विविध व्यवसायों, उद्योगों, एवं प्रवृत्तियों को केन्द्र में रखकर अभ्यासक्रम की रचना करने पर बल दिया।

नानुभाई (वालुकड) ने आधुनिक विषयों को भी नई तालीम आधारित अभ्यासक्रम में जगह देने की बात करते हुए अंग्रेज़ी, जैसे विषयों को ग्रामविद्यापीठों में शीघ्रातिशीघ्र चालू करने की मांग की।

अरुणभाई दवे ने नई तालीम का दर्शन क्या है? इस प्रश्न से अपने व्याख्यान का प्रारंभ करते हुए प्रवर्तमान समय में नई तालीम की आवश्यकता बताई। उन्होंने नई तालीम के दायरे को विस्तृत करने की

आवश्यकता जताई। उन्होंने अन्य शिक्षा क्षेत्रों के विचारों को भी सुनने की एवं नई तालीम में खुलापन लाने की बात पर बल दिया। उन्होंने कहा कि ग्लोबल वार्मिंग की जो घटना हुई है, उसका कारण मनुष्य है। एक तरफ़ सांस्कृतिक प्रकोप है, दूसरी तरफ़ प्राकृतिक प्रकोप है। मनुष्य इन प्रकोपों का सामना कर रहा है। उन्होंने ऐसी शिक्षा की आवश्यकता बताई जो टिकाऊ हो। शिक्षण ऐसा हो जो संवेदनशील नागरिक बनाए। शिक्षा से व्यक्ति में संवेदना और श्रद्धा का विकास होना चाहिए। उन्होंने बताया कि मानवजाति का संहार मनुष्य द्वारा एक साथ की गई भूल से होगा। आज मनुष्य को एक साथ मरना आता है पर एक साथ जीना नहीं आता है। इसलिए आज ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है, जो हमें एक साथ जीना सीखाए।

उच्च शिक्षा में श्रम का उपयोग किस प्रकार किया जाए? इस दिशा में सोचने की आवश्यकता बताई। इसके लिए उन्होंने परम्परागत व्यवसाय ही श्रम है, इस बात को जोड़कर खुले दिमाग़ से सोचने की आवश्यकता बताई। उन्होंने उच्च शिक्षा में ऐसी शिक्षा की आवश्यकता बताई जिसमें संशोधनात्मक दृष्टि का विकास किया जा सके।

मनसुखभाई सल्ला ने ग्रामविद्यापीठों की प्रवर्तमान स्थिति बताते हुए कहा कि गुजरात में अलग–अलग ज़िले में ग्रामविद्यापीठों का आरंभ किया गया है। ग्रामविद्यापीठों में अभ्यासक्रम में पुनरावर्तन किया गया है, इससे कई प्रकार की समस्याएं सामने आई हैं। इस कारण ग्रामविद्यापीठों के स्नातकों के पास जो अपेक्षाएं थीं वह पूरी नहीं हो पाई हैं। उन्होंने कहा कि प्रवर्तमान शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन की आवश्यकता है। उन्होंने यह भी कहा कि अगर हमें गांधीजी के विचार एवं सिद्धान्तों को चरितार्थ करना है तो सरकार से बिना अनुदान लिए स्ववित्तीय पोषित बुनियादी संस्थाओं का प्रारंभ करना पड़ेगा। उन्होंने बताया कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने (1985) ग्राम आधारित बुनियादी शिक्षा पर बल दिया है।

उन्होंने ग्रामीण समाज की स्थिति को बताते हुए कहा कि आज ऐसे कई गांव हैं जहां हमारे ग्रामविद्यापीठों और गूजरात विद्यापीठ के स्नातक हैं। परंतु वे आज भी गांवों की समस्याओं का हल नहीं कर पाते हैं। इन बातों को भी नई तालीम के अभ्यासक्रम में रखे जाने पर उन्होंने बल दिया। समस्याओं के निदान केवल शोध विवरणों में देखने को मिलते हैं। स्नातकों में भावनात्मक संवेदनाओं का विकास नहीं होता। इस विषय पर नई तालीम में बल देने की आवश्यकता बताई। उन्होंने कहा कि नई तालीम का अभ्यासक्रम इस प्रकार का हो जो छात्रों का सर्वांगीण विकास करे। आज विद्या विस्तरण का भाव भी छूट गया है, विद्या का विस्तरण कैसे हो? यह भी छात्रों को सिखाया जाए। इस प्रकार उन्होंने शिक्षण, संशोधन और विस्तरण के सामूहिक विचार की आवश्यकता बताते हुए कहा कि यह त्रिकुटी टूटनी नहीं चाहिए।

मूल्यांकन करने की कई पद्धतियां हैं जिनमें सर्वग्राही मूल्यांकन करने का सुझाव दिया गया है। नई तालीम को एक नये दर्शन का अभ्यासक्रम बताते हुए कहा कि इस नए दर्शन में समाज शोषणमुक्त होगा। योग, उद्योग, सहयोग, सहकार, सहजीवन जिसकी तालीम छात्रालय समूह जीवन द्वारा दी जा सकती है, की आवश्यकता पर बल दिया।

प्रवीणभाई ने अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा कि ग्रामविद्यापीठों में मात्र कृषि का अभ्यास होता है, पाठ्यक्रम में स्वभाषा का उल्लेख नहीं है। उन्होंने ग्रामविद्यापीठों में नई तालीम के मुख्य तत्त्वों को लाने की आवश्यकता बताई। उन्होंने स्थिर, सुंदर और समृद्ध विश्व का निर्माण करने हेतु नई तालीम के अभ्यासक्रम में परिवर्तन लाने की बात की। उन्होंने योग का महत्त्व बताते हुए कहा कि इससे

छात्रों का शारीरिक एवं मानसिक विकास होता है।

चन्द्रकान्तभाई भोगायता ने अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा कि नई तालीम में हमारी ज़रूरतों के अनुसार परिवर्तन करते हुए नित्य नवीनता लाने की ज़रूरत है। उन्होंने कहा कि शिक्षण को अनुभवात्मक बनाया जाना चाहिए। साथ ही अभ्यासक्रम रचना में टेक्नोलोजी का उपयोग किए जाने की आवश्यता बताई।

अशोक भार्गव ने कहा कि श्रमकार्य को पाठ्यक्रम में स्थान देना चाहिए। शिक्षकों में हमेशा नया सीखते रहने की आवश्यकता बताई। उन्होंने कहा कि ऊर्जा और जल जैसे महत्त्व के विषय हैं, अतः पाठ्यक्रम इन विषयों से संबंधित हो।

कार्य शिविर के अंत में प्रमुख विद्वान् सहभागियों प्रवीणभाई ठक्कर, भरतभाई देसाई, करशनभाई देसाई, अशोक चौधरी, डॉ. हंसमुखभाई एवं अवनी बहन भट्ट ने अपने–अपने विचार प्रस्तुत किए। उन्होंने मुख्य रूप से श्रमकार्य को स्थान देने, स्वभाषा, मातृभाषा के माध्यम से शिक्षण देने, छात्रावास समूहजीवन को स्थान देने की बात कही। साथ ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के आधार पर शिक्षण दिए जाने की आवश्यकता जताई। शिक्षण को अखंडित रूप में दिया जाए। प्राथमिक शिक्षा में परीक्षा प्रणाली बन्द किए जाने पर बल दिया। अभ्यासक्रम ऐसा होना चाहिए जो शोषणमुक्त समाज की रचना कर सके। पंचायत, सहकार जैसे विषयों को अभ्यास क्रम में स्थान दिया जाए। विज्ञान और अध्यात्म को भी स्थान दिया जाए। साथ ही वास्तविकता और दर्शन को भी अभ्यासक्रम में स्थान देने का सुझाव दिया।

अंत में श्री कुमुदभाई ठाकर ने कहा कि एक ऐसी समिति का गठन किया जाए जो तालीम के तत्त्वों पर चिन्तन करे। उन्होंने लोक भारती सणोसरा का उदाहरण देते हुए कहा कि लोक भारती का अभ्यासक्रम समग्र देश के लिए उपयोगी बन सकता है। उन्होंने अभ्यासक्रम में उद्योग, समाजसेवा और समूहजीवन को स्थान दिए जाने की बात की।

इस गोष्ठी में आधारभूत मूल्यों के संदर्भ में यह बात उभरकर सामने आई कि नई तालीम की पाठ्यर्चा ऐसी हो जो समकालीन सामाजिक दृष्टिकोण एवं शहरी व ग्रामीण समाज के संदर्भ में हो तथा सहभागिता आधारित विकास के परिप्रेक्ष्य में हो।

इस प्रकार की रूपरेखा के आधार पर शिक्षा के लिए छात्रावास में रहते हुए अध्यापन करना अनिवार्य होगा पाठ्यचर्या की इस रूपरेखा में शिक्षा के औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों ही तत्त्वों का समावेश हो। कक्षागत शिक्षण, कार्यशाला अनुभव एवं क्षेत्रीय अध्ययन औपचारिक शिक्षण के अंग बनें। सहजीवन अनौपचारिक शिक्षा के अंतर्गत होगा। कार्यगोष्ठी में विशेषतः दो आधार पत्रों पर चर्चा हुई। प्रमुख सुझाव यह उभरा कि पाठ्यचर्या समिति एक नमूने की पाठ्यचर्या रूपरेखा तैयार करे। सहभागियों में यह भी सहमति बनी कि केवल पाठ्यचर्या बनाने से काम नहीं चलेगा। मुख्य मुद्दा यह है कि इस प्रकार की पाठ्यचर्या की प्रभावी क्रियान्विति कैसे हो? इस संदर्भ में शिक्षकों का प्रभावी प्रशिक्षण आवश्यक होगा तथा संस्थाओं में नई स्फूर्ति एवं वातावरण विकसित करना होगा।

# नन्हे हाथ, बड़े काम

★ कुमार अनुपम

विद्या भवन पब्लिक स्कूल के एक कक्ष में कुछ लोगों का जमावड़ा! यहां हरेक के मुंह से वाह, वाह के शब्द गूंज रहे थे। यह एक ऐसा अवसर था जहां बच्चों के द्वारा सृजित चीज़ों की प्रदर्शनी का मुआयना किया जा रहा था। जहां कोई प्रतियोगिता नहीं, कोई परीक्षा का तनाव नहीं।

विद्या भवन पब्लिक स्कूल में फरवरी महीने में आयोजित प्रदर्शनी को लेकर हमारी बातचीत प्रधानाध्यापिका श्रीमती रमारामजी से हुई। उन्होंने कहा कि इस प्रदर्शनी पर बच्चे–बच्चियां अगस्त महीने से ही काम कर रहे हैं। वैसे तो दो–तीन मुद्दों पर विचार किया गया, लेकिन कला और शिल्प उन्होंने इसलिए चुना कि इसमें हर एक बच्चे–बच्चियों को अपनी सृजनात्मकता को साकार रूप देने के अलग–अलग मौक़े मिलते हैं। दिलचस्प बात यह है कि विद्यालय में कला और शिल्प के लिए कोई शिक्षिका नहीं हैं। इस वर्ग में बच्चे सिर्फ़ चित्रकारी करते हैं। इसमें लैंडस्केप बनाते हैं। जिस बच्चे का जितना अवलोकन और अनुभव रहता है उसी आधार पर कुछ बनाते हैं। क्यों न सृजनात्मकता के ज़्यादा से ज़्यादा मौक़े दिये जायं।

इस प्रदर्शनी के लिए कुछ किताबें ख़रीदी गयीं। इन्हें देखने के बाद बच्चों ने इन्हें एक तरफ़ रख दिया और कहा कि वे ख़ुद से बनायेंगे। काम करने के लिए प्रतिदिन एक घंटे का ज़ीरो पीरियड रखा गया। जो भी सृजन किया जाए वह पर्यावरण हितैषी हो साथ ही कम या बिना लागत के सामग्री उपलब्ध हो पाए इन पर मुख्य ध्यान दिया गया। बच्चों द्वारा इस प्रदर्शनी में पत्तियां, काग़ज़, कार्ड बोर्ड, ग्रीटिंग काड्र्स, वेडिंग काड्र्स, रंग, मोम, आइस्क्रीम के चम्मच, धागे, कपड़े के टुकड़े, ऊन, शीशा, वेस्ट पेपर रोल, सब्ज़ी, दाल, गोंद, पेंसिल, स्केच, पेपर स्ट्रिप्स जैसी चीज़ों का भरपूर उपयोग किया गया।

बच्चों ने टीम भावना से काम किया। इसका प्रमाण यह है कि ये प्रदर्शनी सामूहिक रूप से लगायी गयीं, किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं रहा। अलग–अलग कक्षा के बच्चों के ये सम्मिलित प्रयास रहे। इसमें शिक्षिका ने मददगार का काम किया। इस प्रदर्शनी में क्या नहीं है! एक तरफ़ पत्तियों से बना चिड़ियाघर है तो दूसरी तरफ़ पेन होल्डर, कहीं

★ विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र उदयपुर। बुनियादी शिक्षा एवं खोजबीन की संपादकीय प्रक्रिया में संलग्न।

ज्वैलरी डिज़ाइनिंग है तो कहीं साड़ी डिज़ाइनिंग, कहीं शगुन की मेंहदी है तो कहीं पेपर मेशी, कहीं कोलाज़ है तो कहीं मांडना आदि।

पत्तियों से बने चिड़ियाघर में तोता, तितली, चीता, उल्लू, शुतुरमुर्ग़, हाथी, मेंढ़क, बतख, कछुआ, शेर, कबूतर, मोर हैं जो अपने बारे में बताते हैं जो हमारे जीवन को जोड़ते हैं। इनमें कुछ वैज्ञानिक तथ्य भी दिये गये हैं जैसे मेंढ़क कहता है कि मैं उभयचर हूं, पानी और मिट्टी पर रहता हूं, मैं त्वचा से सांस लेता हूं। शेर अपने बारे में बताता है कि उसके परिवार में ऐसा नियम है बड़े–बूढ़े पहले खाते हैं। कबूतर कहता है मैं किसानों का मित्र हूं। मैं तितली हूं– संसार की सबसे रंगीन कृति। ज्वैलरी डिज़ाइनिंग, साड़ी डिज़ाइनिंग किसी भी डिज़ाइनिंग से कम अनोखी नहीं हैं। इसमें बच्चों की हाथ की कारीगरी देखते ही बनती है। शगुन की मेंहदी भी देखने लायक है। यह काग़ज़ पर कई आकृतियों में बनी हैं।

प्रदर्शनी में यह बात सच होती है कि कुछ रचने के लिए बहुत महंगी सामग्री की ज़रूरत नहीं है। अनुपयोगी सामग्रियां इसके लिए उपयोगी बनती हैं। ऐसा ही एक प्रयास आइसक्रीम के चम्मच पर कलर करके कुछ रोचक चित्र बनाये गये हैं। इसी तरह अनुपयोगी पेपर रोल और ग्रीटिंग काडर्स् से पेन होल्डर बनाया गया है। ज्वैलरी बॉक्स डिज़ाइनिंग में दाल का उपयोग किया गया है। ऊपर से बाक्स पर सुनहरी पालिश कर दी गई है।

पेपर स्ट्रिप डिज़ाइनिंग में पेपर के छोटे–छोटे स्ट्रिप काटकर पेपर पर चिपका कर कुछ वृत्ताकार, चक्राकार आकृतियां देखते ही बनती हैं। इसी तरह पंच डिजाइनिंग में लाल पंच बिंदी को चिपका कर कुछ आकृतियां बनी हैं। इसी तरह जोकर भी देखने में मज़ेदार है।

दरअसल बच्चों को जब–जब भी सृजन करने के खुले अवसर दिए गए हैं उन्होंने मिसाल बनाई है। गांधी ने बुनियादी शिक्षा में हाथों से रचने की शिक्षा को एक महत्त्वपूर्ण आयाम बताया है। जब बच्चा अपने हाथों से कुछ करता है तो उसमें शांति के भाव पैदा होते हैं, उसमें आत्मविश्वास पैदा होता है। सृजन करते वक्त अभिव्यक्ति का सुनहरा अवसर मिलता है। इस प्रकार से बच्चा सहज रूप से ज्ञान का निर्माण करता है।

विद्या भवन पब्लिक स्कूल की बच्चों द्वारा लगाई प्रदर्शनी यही कहानी कहती है।

# कार्यक्रम संचालन में भाषा

★ मंजू श्रीमाली

यह हमारे महाविद्यालय के उद्घाटन समारोह का दिन था। साथ ही गांधीजी के विचारों और उनके द्वारा प्रतिपादित नई तालीम की शिक्षा पर प्रकाश डालने के लिए एक व्याख्यान का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम के संचालन का कार्य मुझे सौंपा गया। मैंने सोचा चूंकि आजकल चारों ओर अंग्रेज़ी का बोलबाला है और फिर मेरा विषय भी अंग्रेज़ी ही था, तो सोचा क्यों न इस कार्यक्रम का संचालन मैं अंग्रेज़ी में ही करूं। यही सब सोचकर मैंने कार्यक्रम की शुरुआत और संचालन अंग्रेज़ी में करना तय किया।

इस कार्यक्रम के मुख्य अतिथि गूजरात विद्यापीठ के कुलपति श्रीमान् नारायणभाई देसाई तथा अध्यक्ष श्रीमान् रियाज़ तहसीन थे। निश्चित समय पर कार्यक्रम का प्रारम्भ हुआ और मैंने अंग्रेज़ी में संचालन जारी रखते हुए श्रीमान् नारायणभाई देसाई को अपने विचार व्यक्त करने के लिए मंच पर आमंत्रित किया। वे मंच पर आये और उन्होंने मेरे द्वारा अंग्रेज़ी में कार्यक्रम संचालन करने की कड़ी आलोचना की। उन्होंने कहा कि इसकी जगह अगर मैं हिन्दी या राजस्थानी में संचालन करती तो ज़्यादा प्रभावी लगता। उन्होंने गांधीजी के द्वारा एक कार्यक्रम में गुजराती में भाषण देने का एक उदाहरण प्रस्तुत किया। नारायणभाई ने अपना रोष व्यक्त करते हुए कहा कि बुनियादी शिक्षा का ढिंढोरा पीटना और वास्तव में उसे अपने जीवन में उतारना दो अलग–अलग बातें हैं। यह सब सुनकर मैं हक्की–बक्की रह गई। मेरे सभी अध्यापकों और सहपाठियों की निगाहें मुझ पर थी। मेरी स्थिति तो काटो तो ख़ून नहीं जैसी हो गई और मुझे अपनी गलती पर बहुत अफ़सोस हो रहा था, अब मैं क्या करती? क्योंकि कार्यक्रम अभी समाप्त नहीं हुआ। मुझे आगे भी संचालन करना था।

नारायणभाई अपना भाषण समाप्त करने के पश्चात् अपने स्थान पर जाकर बैठे। मैंने स्थिति को भांपते हुए तथा सभी की जिज्ञासाओं को शांत करने के लिए तुरन्त अपना कार्यभार संभाला और हिन्दी में बोलना आरम्भ किया। मैंने श्रीमान् नारायणभाई से माफ़ी मांगी और एक सम्पूर्ण शिक्षक बनने और गांधीजी के विचारों और उनकी नई तालीम की पद्धति को वास्तव में अपने जीवन में उतारने का संकल्प सबके सामने किया और ये वादा किया कि मैं अंग्रेज़ी बोलूंगी और पढ़ूंगी ज़रूर पर अपनी भाषा से अधिक प्रमुखता उसे कभी नहीं दूंगी। मेरे इस निर्णय से नारायणभाई मुझसे प्रभावित हो गये और मुझे आशीर्वाद दिया।

अब मैंने कार्यक्रम को आगे बढ़ाते हुए श्रीमान् रियाज़ तहसीन को मंच पर आमंत्रित किया। वे बहुत खुश थे और उन्होंने आते ही कहा कि ''वास्तव में इस लड़की को बी.एड. की डिग्री आज ही मिल गई है।'' उनके ये वचन सुनकर मैं बहुत प्रसन्नचित हो गई। मेरे सभी अध्यापकों और मेहमानों ने भी मेरी काफ़ी तारीफ़ की और अपने सफल संचालन के लिए मुझे बधाई दी। यह दिन वास्तव में मेरी ज़िन्दगी का अविस्मरणीय दिन रहेगा।

★ विद्या भवन गांधी अध्ययन शिक्षण संस्थान रामगिरि, उदयपुर में पूर्व सेवाकालीन छात्राध्यापिका हैं।

विद्या भवन पब्लिक स्कूल, उदयपुर में बच्चों द्वारा लगाई गई प्रदर्शनी की चुनिंदा कृतियां